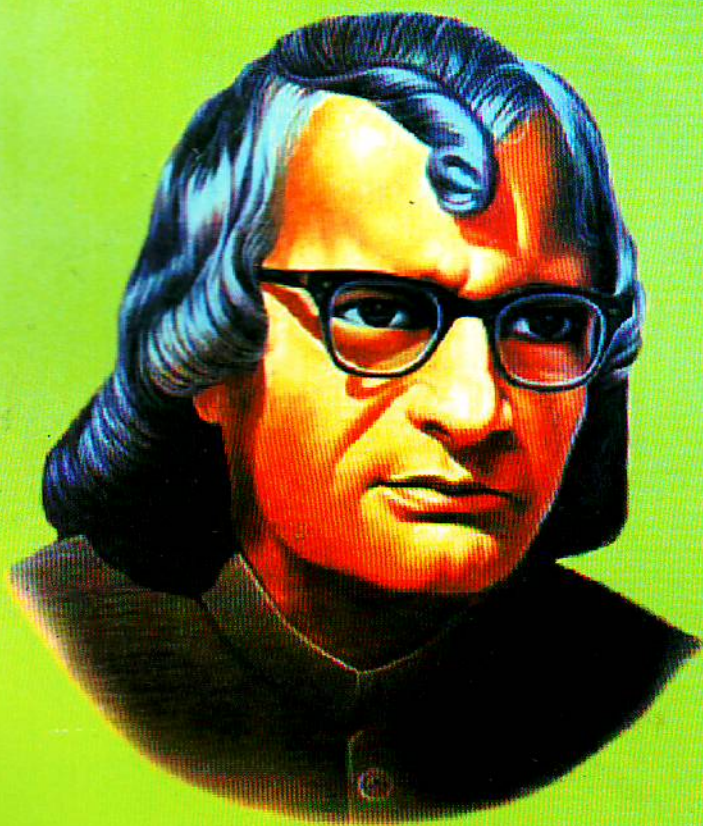


पं० सुमित्रा नन्दन पंत

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सुमित अग्रवाल, एम.फिल.



आर्यावर्त प्रकाशन, अमरोहा

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम संस्करण : सन् 2016 ईस्वी

प्रकाशक : आर्यावर्त प्रकाशन
सौम्या सदन, गोकुल विहार,
अमरोहा-244221 (उ०प्र०)
दूर. : 05922-262033/ 9412139333

© सर्वाधिकार लेखकाधीन

टंकण : पं० चन्द्रपाल 'यात्री'
आवरण : इशरत अली

मूल्य : 200/-

मुद्रक : आर्यावर्त प्रिन्टर्स, अमरोहा

प्राप्ति स्थल ♦ सुमित अग्रवाल
मौ०- सोसायटी, निकट- आर्य समाज मन्दिर,
मण्डी धनौरा, जिला- अमरोहा -244231
♦ आर्यावर्त प्रकाशन
सौम्या सदन, गोकुल विहार
अमरोहा-244221 (उ०प्र०)
दूरभाष : 05922-262033/ 9412139333

॥ ओ३म् ॥

समर्पण



पूज्यपाद दादा'श्री' लाला जयगोपाल अग्रवाल जी
(पुत्र श्री लाला भगवानदास अग्रवाल जी)

एवं

श्रद्धेय दादी'श्री' श्रीमती कश्मीरी देवी जी
को

सादर समर्पित

विषय सूची (परिच्छेद सूची)

भूमिका 9

प्रकाशकीय 11

(क) प्रथम अध्याय-

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व 13

(ख) द्वितीय अध्याय-

साहित्य साधना 26

(ग) तृतीय अध्याय-

पन्त के काव्य में मानवतावाद :

मानवतावाद की अवधारणा,

विवेचना एवं वर्गीकरण 61

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७

(घ) चतुर्थ अध्याय-

पन्त के काव्य में सामयिक चेतना

70

(ङ) पंचम अध्याय-

पन्त के काव्य में प्रकृतिवाद

110

(च) षष्ठ अध्याय-

उपसंहार

123

(छ) परिशिष्ट-

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(अ) आधार ग्रन्थ- सुमित्रानन्दन पन्त की कृतियाँ

(ब) सहायक ग्रन्थ

129

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८

भूमिका

हिन्दी साहित्य के प्रति अनुराग रखने वाले हिंदी प्रेमियों के लिये काव्यजगत के हस्ताक्षर 'पन्त' जी का नाम अपरिचित नहीं हो सकता। 'पन्त' जी का बचपन का नाम 'गोसाईदत्त' था। उनका प्रचलित नाम कैसे पड़ा? इसके विषय में एक रोचक प्रसंग है।

'गोसाईदत्त' नाम कवि को अप्रिय लगने लगा। उन्होंने कक्षा 4 के सर्टिफिकेट पर नाम चाकू से खुरच कर उसके स्थान पर 'सुमित्रानन्दन' लिख दिया। सुमित्रा-नन्दन अर्थात् रानी समित्रा के पुत्र 'लक्ष्मण' और 'शत्रुघ्न'। इनमें लक्ष्मण पन्त जी के आदर्श पात्र रहे हैं।

नामकरण की रोचकता के अलावा 'पन्त' जी 'प्रकृति के सुकुमार कवि' निर्विवाद रूप से कहे गये हैं। सुकुमार का अर्थ (व्यक्ति या शरीर), जिसमें सौन्दर्यपूर्ण कोमलता हो। (पदार्थ) जो सहज में कुम्हला या मुरझा सकता अथवा थोड़ी-सी असावधानी से खराब हो सकता हो। सुन्दर कुमार। सुन्दर बालक। वह जो बालकों के समान कोमल अंगों वाला हो। इस प्रकार 'पन्त' जी को सुन्दरता के कारण यह विशेषण उचित आता है।

कवि की माता सरस्वती देवी का स्वर्गवास जन्म के समय ही हो गया था। उनका पालन प्रकृति के ही संरक्षण में हुआ।

माँ के इस अभाव की पूर्ति 'कौसानी' व प्रकृति ने की। स्पष्ट है-

कौसानी की गोद मुझे माँ की

गोद से भी प्यारी है।

माँ से बढ़कर रही धात्री तू

बचपन में मेरे हित।

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९

इन दो बिन्दुओं पर विचार के पश्चात् प्रथम अध्याय में कवि के व्यक्तित्व पर जैसे जन्म, माता-पिता, वंश, बाल्यकाल, शिक्षा, कॉलेज, रेडियो, सम्मान व महाप्रयाण पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में 'पंत' जी की अनमोल साहित्य साधना, कृतियों व रचनाओं का वर्णन है।

तृतीय अध्याय में 'पंत' जी के काव्य में मानवीय मूल्यों के विषय में बात की गयी है।

मानवतावादी मूल्यों का वर्णन चतुर्थ अध्याय में करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय में उनके व्यक्तित्व में प्रकृति प्रेम व सुकुमारता को बताने की कोशिश की है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण बात है।

अंत में, षष्ठ अध्याय में इतने महान् कवि व व्यक्तित्व के बारे में, जिसके लिये कुछ बताना सूर्य को प्रकाश दिखाने के समान है, अपनी इस लघु पुस्तक में बात समाप्त कर दी है।

इस पुस्तक की भूमिका के माध्यम से सभी सज्जनों का, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में मेरे सहयोगी रहे, कृतज्ञ रहते हुए ईश्वर का धन्यवाद करता हूं और बात समाप्त।

धन्यवाद!

शुभाकांक्षी
सुमित अग्रवाल
मण्डी धनौरा

प्रकाशकीय

हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार व प्रकृति के चितरे कवि पं. सुमित्रानन्दन पन्त का नाम साहित्य में सदैव अमर रहेगा। उनका रचनाकर्म अन्तर्मन को छूता है। उनके हृदय में प्रत्येक जन के लिये संवेदनशीलता है वे एक ऐसी सृष्टि का निर्माण करना चाहते हैं जहाँ उनका स्वर, विचार और मन जगत के स्वर, विचार और मन में समाहित हो जाये।

पंत जी के जीवन में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन एवं देश-प्रेम की ज्योति इतनी प्रखर थी कि उसकी उष्णता से कोई भी अछूता नहीं रह सका। इसीलिए उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण के गीत सुनाई पड़ते हैं। उनके लिये मातृभूमि पर गौरव का कारण केवल उसका अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य नहीं है, उन्हें तो मातृभूमि पर गर्व इसलिये है क्योंकि उनका देश संसार को प्रथम संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाला है।

पंत जी की सांस्कृतिक चेतना अपने तात्त्विक रूप में बड़ी उदार है। उनका मानना है कि हर सांस्कृतिक संचरण किसी देश, काल अथवा वर्ग तक सीमित न होकर विश्व-जनीन होना चाहिये। पंत जी इस तथ्य को भी पूरी तरह पहचानते हैं कि सांस्कृतिक चेतना को जगाने वाली शिक्षा तभी सार्थक, उपयोगी और प्रभावशाली हो सकती है जब उसे अपनी विशिष्ट भूमि के माध्यम से प्रदान किया जाये और वह अपनी प्रण-शक्ति एवं विचार-परम्परा को आधार बनाकर चले।

पंत जी राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय एकता के भी पक्षधर थे। वे ईश्वर भक्ति से अपने लिये कोई आकांक्षा नहीं रखते थे वे जो कुछ भी ईश्वर से चाहते थे वह लोक-कल्याण, विश्व-कल्याण के लिये चाहते थे। वे अपने लिये चाहते थे तो केवल ऐसी शक्ति जिससे विश्व कल्याण कर सकें। पंत जी का संस्कृति की रक्षा के प्रति

भी उदार दृष्टिकोण था। वह नव संस्कृति चाहते थे उनके अनुसार मानवता की प्रतिष्ठा से ही नव संस्कृति का निर्माण हो सकता है। इसी से नयी संस्कृति में नवमानवता का नव प्रकाश होगा, और साथ ही होगी नारी की मुक्ति। अस्तु,

आर्यावर्त प्रकाशन का शुभारम्भ सामयिक संचेतना तथा, राष्ट्र व समाज के कल्याणार्थ उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशन के उद्देश्य से किया गया है। हमारा यह भी संकल्प है कि दुर्लभ साहित्य का न केवल पुनर्प्रकाशन किया जाए वरन् उसे न्यूनतम दामों में उपलब्ध भी कराया जाये। इस श्रृंखला में आर्यजगत के प्रमुख स्तम्भ, प्रखर राष्ट्रचेता, दयानन्द लघुग्रन्थ संग्रह, सत्यार्थ प्रकाश, क्रान्ति, बन्दा वैरागी, विजय कुलश्रेष्ठ-हीरक जयंती ग्रन्थ, तारा टूटा व यात्रा-यात्रा अन्तःयात्रा आदि सहित अनेक महत्वपूर्ण लघु एवं बृहद् ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है। प्रकाशन रूपी यज्ञ की यह पावन ज्योति निरन्तर प्रज्वलित रहे- एतदर्थ आपके बहुमूल्य सुझावों व समालोचनात्मक प्रतिक्रिया रूपी आहुतियों की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. बीना/डॉ. अशोक कुमार आर्य

- ♦ मिति- आषाढ शु. पूर्णिमा, सं. २०७३ वि.
तदनुसार दिनांक- १६ जुलाई, २०१६

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२

प्रथम अध्याय

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व

किसी भी कवि के संश्लिष्ट रचना संसार में प्रविष्ट होने के लिये उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ज्ञान आवश्यक है। उसके काव्य को सम्यक् रूप से समझने के लिये उसकी जीवनी से परिचित होना अनिवार्य है क्योंकि काव्य की मुख्यतः दो प्रेरक शक्तियाँ होती हैं- एक तो कवि की स्वयं की जीवनानुभूति से प्रेरित प्रतिक्रियाएँ और उसके संस्कार तथा दूसरी युगीन परिस्थितियाँ, कवि का जीवन दर्शन, उसकी मान्यताएँ, आस्था आदि विभिन्न परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के अनन्तर किस प्रकार निर्मित होती है और उसकी चेतना किस प्रकार ऊर्ध्वतर होती जाती है- यह हम उसकी जीवनी द्वारा ही जान सकते हैं। पंत की समस्त काव्योपलब्धि उनके उदात्त व्यक्तित्व का परिणाम है। अतः उनकी काव्य कला का आकलन करने से पहले उनका जीवन-परिचय आवश्यक है।

जन्म :

पंत जी का जन्म अल्मोड़ा से 53 कि०मी० दूर कौसानी उत्तरी पर्वतीय प्रदेश की अत्यन्त सुन्दर उपत्यका में 20 मई सन् 1900 ईसवी (संवत् 1957) में हुआ था।¹ इनका जन्म जब हुआ, तब उन्नीसवीं सदी के समाप्त होने में केवल सात माह शेष थे।

धरती पर शिशु ने पहिले आँखें खोली

नव प्रभात बेला थी, नव जीवन अरूणोदय

विगत शती थी मुक्तप्राय, युगसंधि का समया²

माता-पिता :

पंत की माता का नाम सरस्वती देवी तथा पिता का नाम पंडित गंगादत्त था, पंत का जन्म और माता सरस्वती देवी की मृत्यु ये दोनों घटनाएँ साथ-साथ घटित हुईं-

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१३

भी उदार दृष्टिकोण था। वह नव संस्कृति चाहते थे उनके अनुसार मानवता की प्रतिष्ठा से ही नव संस्कृति का निर्माण हो सकता है। इसी से नयी संस्कृति में नवमानवता का नव प्रकाश होगा, और साथ ही होगी नारी की मुक्ति। अस्तु,

आर्यावर्त प्रकाशन का शुभारम्भ सामयिक संचेतना तथा, राष्ट्र व समाज के कल्याणार्थ उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशन के उद्देश्य से किया गया है। हमारा यह भी संकल्प है कि दुर्लभ साहित्य का न केवल पुनर्प्रकाशन किया जाए वरन् उसे न्यूनतम दामों में उपलब्ध भी कराया जाये। इस श्रृंखला में आर्यजगत के प्रमुख स्तम्भ, प्रखर राष्ट्रचेता, दयानन्द लघुग्रन्थ संग्रह, सत्यार्थ प्रकाश, क्रान्ति, बन्दा वैरागी, विजय कुलश्रेष्ठ-हीरक जयंती ग्रन्थ, तारा टूटा व यात्रा-यात्रा अन्तःयात्रा आदि सहित अनेक महत्वपूर्ण लघु एवं बृहद् ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है। प्रकाशन रूपी यज्ञ की यह पावन ज्योति निरन्तर प्रज्वलित रहे- एतदर्थ आपके बहुमूल्य सुझावों व समालोचनात्मक प्रतिक्रिया रूपी आहुतियों की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. बीना/डॉ. अशोक कुमार आर्य

- ♦ मिति- आषाण शु. पूर्णिमा, सं. २०७३ वि.
तदनुसार दिनांक- १६ जुलाई, २०१६

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२

प्रथम अध्याय

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व

किसी भी कवि के संश्लिष्ट रचना संसार में प्रविष्ट होने के लिये उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ज्ञान आवश्यक है। उसके काव्य को सम्यक् रूप से समझने के लिये उसकी जीवनी से परिचित होना अनिवार्य है क्योंकि काव्य की मुख्यतः दो प्रेरक शक्तियाँ होती हैं- एक तो कवि की स्वयं की जीवनानुभूति से प्रेरित प्रतिक्रियाएँ और उसके संस्कार तथा दूसरी युगीन परिस्थितियाँ, कवि का जीवन दर्शन, उसकी मान्यताएँ, आस्था आदि विभिन्न परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के अनन्तर किस प्रकार निर्मित होती है और उसकी चेतना किस प्रकार ऊर्ध्वतर होती जाती है- यह हम उसकी जीवनी द्वारा ही जान सकते हैं। पंत की समस्त काव्योपलब्धि उनके उदात्त व्यक्तित्व का परिणाम है। अतः उनकी काव्य कला का आकलन करने से पहले उनका जीवन-परिचय आवश्यक है।

जन्म :

पंत जी का जन्म अल्मोड़ा से 53 कि०मी० दूर कौसानी उत्तरी पर्वतीय प्रदेश की अत्यन्त सुन्दर उपत्यका में 20 मई सन् 1900 ईसवी (संवत् 1957) में हुआ था।¹ इनका जन्म जब हुआ, तब उन्नीसवीं सदी के समाप्त होने में केवल सात माह शेष थे।

धरती पर शिशु ने पहिले आँखें खोली

नव प्रभात बेला थी, नव जीवन अरुणोदय
विगत शती थी मुक्तप्राय, युगसंधि का समया²

माता-पिता :

पंत की माता का नाम सरस्वती देवी तथा पिता का नाम पंडित गंगादत्त था, पंत का जन्म और माता सरस्वती देवी की मृत्यु ये दोनों घटनाएँ साथ-साथ घटित हुईं-

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१३

जन्म-मरण संग आए थे
संग बन हमजोली
मृत्यु अंक में जीवन ने जब
आँखें खोलीं।³

माँ के इस अभाव की पूर्ति प्रकृति ने की। वही उनकी माता, पिता, भाई, सखा, शिक्षक, प्रेयसी सभी कुछ बन गयी। जैसे माँ बच्चे को अपनाती है, वैसा प्रकृति ने मुझे अपनाया है। उसने मेरे चंचल मन की आकुल व्याकुलता को जिसे मैं किसी पर प्रकट नहीं कर सका हूँअपने में ले लिया है। उसकी एकान्त क्रोड़ में बैठकर मैं अपने को सबसे बड़ा अनुभव करता हूँ। जो अनुभूति मुझे और किसी के सम्मुख नहीं हुई है।⁴ बालक पंत का पोषण मातृ प्रकृति ने ही किया। प्रकृति का इतना निकट साहचर्य उसे प्राप्त हुआ इस तथ्य की पुष्टि उनकी रचनाओं द्वारा होती है।

“कौसानी की गोद मुझे माँ की
गोद से भी प्यारी है।”⁵
माँ से बढ़कर रही धात्री तू
बचपन में मेरे हित।
धाति कथा रूपक भरः तूने
किया जनक बन पोषण
मातृहित बालक के सिर पर
वरद हस्त धर गोपना।⁶

मातृस्नेह से वंचित इस भावुक कवि के काव्य में ‘माँ’ की पुनीत स्मृति बिखरी हुई मिलती है। ‘वीणा’ की अंतिम पंक्तियाँ हैं-
जीवन भर भी माँ! मैं पूरे
गा न सकूँगा गीत तेरे
अपनी वाणी में भर स्वरा।⁷
ग्रंथि में इस अभाव का वर्णन इस प्रकार है-
नियति ने ही निज

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१४

कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी
छीन ली,
बाल में ही हो गयी
थी लुप्त हाँ!
मातृ अंचल की
अभय-छाया मुझे।⁸

इस प्रकार प्रकृति ने उन्हें पूर्णरूपेण अपना लिया था और कौसानी का प्राकृतिक सुषमा से पूर्ण प्रांगण ही बालक पंत का वास्तविक घर था। अपनी ‘आत्मिका’ नामक कविता में उन्होंने कौसानी का चित्र इस प्रकार अंकित किया है-

आरोही हिमगिरि
चरणों पर
रहा ग्राम वह
मरकत मणिकण
श्रद्धानत,
आरोहण के
प्रति
मुग्ध प्रकृति का
आत्मसमर्पण।⁹

पंत का बचपन यहाँ हिमाद्रि की स्वच्छ, शुभ्र छाया में विकसित हरी-भरी घाटी में बीता। उनका बालक मन निर्भय होकर इस सुरभित मनमोहक वातावरण में विचरण करता-

छुटपन में विचरा हूँ मैं इन धूप
छांह शिखरों पर
दूर क्षितिज पर हिल्लोलित-सी
दृश्यपटी पर निःस्वर
हल्की गहरी छायाओं के

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१५

रेखांकित से पर्वत
नील, बैंगनी, रक्त, पीत,
हरिताभ वर्ण श्री हहरा
मोहित अन्तर में भर देते आदित
विस्मय गहरा
अन्तरिक्ष विस्फारित नयनों को
अपलक रख तद्वत्।¹⁰

प्रकृति का यह रहस्यमय सौन्दर्य पंत के किशोर मन को भाव-मुग्ध कर देता और उन्हें अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती। “यह आत्म-विस्मरण ही प्राकृतिक सौन्दर्य का बोध या नैसर्गिक आनंद था। यही एकमात्र सत्य था कि वे अपने को तथा अपने मातृहीन बचपन, घर-द्वार, धुधा-तृष्णा सभी को वे भूल जाते, सभी से दूर, बहुत दूर उनका मन वहाँ विचरण करने लगता जहाँ मातृ अदृश्य, अज्ञात सत्ता का रहस्यमय सौन्दर्य प्राणों को आह्लादित कर देता। दिनों तक यह सुखद अनुभव उन्हें आत्मविभोर रखता।

वंश :

वंश की दृष्टि से ‘पंत-वंश’ अपने शौर्य और साहित्यिक प्रतिभा के लिये प्रसिद्ध रहा है। इस कुल में बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ, विद्वान, सेनाध्यक्ष, ज्योतिषी, वैद्य तथा कवि हुए हैं। उन्नीसवीं शती के गुमानी पंत कुमाऊँ के प्रख्यात कवियों में माने जाते थे, जिन्होंने संस्कृत, हिंदी और पहाड़ी भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे हैं। जिनमें से अब भी कुछ उपलब्ध हैं। वंशावली के अनुसार कुमाँचलीय ब्राह्मण पंत और जोशी महाराष्ट्र से कुमाँचल आये थे। पंत ऋग्वेदीय चितपावन ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज श्री पुरुषोत्तम एवं पुरुष (पुरू) पंत अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध थे। पंत के दादा मदननारायण संस्कृत के विद्वान कवि थे। अपनी विद्वता के बारे में उन्हें गर्व भी था।¹¹ पंत जी के पिता गंगादत्त जी को भी संस्कृत और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। कौसानी की ‘टी-स्टेट’ के वे उपप्रबंधक थे साथ ही लकड़ी का उनका अपना व्यापार भी था,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१६

जिससे उन्होंने प्रचुर धन अर्जित किया। अल्मोड़ा में उनका निजी मकान भी था। कौसानी में वे सरकारी बंगले में रहते थे।
बाल्यकाल :

पंत अपने माता-पिता की आठवीं और अन्तिम सन्तान थे। उनके तीन बड़े भाई हरदत्त, रघुवरदत्त और देवीदत्त तथा चार बहनें बसन्ती, माधवी, रुक्मिणी और गोरी थीं। “बालक पंत की शारीरिक और भौतिक आवश्यकताओं का स्नेह संरक्षण उनके पिता, फूफी और बूढ़े नौकर बिस्ना ने किया तो उनके मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन का संरक्षण प्रकृति ने स्वयं किया। यही कारण है कि दृढ़ आत्मबल, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और सर्वप्रथम काव्य प्रेरणा भी इन्हें प्रकृति से ही मिली।

बाल्यकाल में पंत पर सबसे अधिक प्रभाव उनके शांत, उदार, कर्मठ और धर्मप्राण पिता के व्यक्तित्व का पड़ा, जो आज भी उनके आदर्श हैं। उन्होंने सदा ही अपने पिता की भाँति आत्मस्थ, स्वाभिमान, निर्भीक, निश्चित और सहृदय बनने का प्रयत्न किया है। वे अपने निष्कलुष, उदार व्यक्तित्व के कारण जीवित हिमशिखर से लगते थे। हिमशिखर से तुलना शायद इसलिये ही हो कि अनजाने ही हिमाद्रि उनका शिक्षक रहा है।

सोच रहा किसके गौरव से मेरा यह अन्तर जग
निर्मित

लगता तब, हे प्रिय हिमाद्रि, तुम मेरे शिक्षक
रहे अपरिचित।¹²

पिता के अतिरिक्त उन पर उनके बड़े भाई श्री हरदत्त पंत का भी प्रभाव पड़ा वे अत्यन्त उच्च साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे। अंग्रेजी और संस्कृत का उन्हें अच्छा ज्ञान था। वे बहुधा मुग्ध कंठ से मेघदूत तथा शकुन्तला के छन्द अपनी नववधू को गाकर सुनाया करते थे। तब न समझने पर भी वह गायन पंत को बड़ा कर्णप्रिय लगता था। उनके पिता के पास आने वाले अनेक उच्च कोटि के साधु संतों का भी गंभीर

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१७

प्रभाव उन पर पड़ा। एक बार तो वे एक सुन्दर साधु के रूप, स्वभाव और भाषणों से आकर्षित हो उसके साथ जाने के लिये तैयार हो गये थे किन्तु उनके बड़े भाई ने ऐसा नहीं होने दिया।

पंत के नाम का प्रसंग काफी रोचक है। मातृविहीन शिशु पंत की दीर्घायु की मनौती मानते हुये उनके वात्सल्य विमूढ़ पिता ने उन्हें एक गोस्वामी हरीगिरी बाबा जी को सौंप दिया, जिन्होंने इनका नामकरण गोसाईदत्त करते हुये उनके गले में रुद्राक्ष बांध दिया। आज भी कुछ लोग उन्हें गुसाईदत्त गुसै कहते हैं। बाद में उन्हें यह नाम अप्रिय लगने लगा और जब उन्होंने कक्षा 4 के सर्टिफिकेट में ध्यान दिया तो नाम परिवर्तन करने की आवश्यकता समझी। उनके निर्भीक दृढ़ स्वभाव ने किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं समझी। उसी समय सर्टिफिकेट पर लिखे नाम को चाकू से खुरच कर उसके स्थान पर सुमित्रानंदन लिख दिया।¹³ सुमित्रानंदन अर्थात् लक्ष्मण उनके आदर्श पात्र रहे हैं।

शिक्षा :

पाँच वर्ष की अवस्था में पंत का विद्यारम्भ संस्कार बड़ी धूमधाम से मनाया गया। संस्कार के उपरान्त उनके फूफा जी ही उन्हें अक्सर पढ़ाया करते थे। तब उनका मन पढ़ने में नहीं लगता तो मिठाई और पैसे आदि का प्रलोभन भी देते थे।

इसी साल सन् 1905 में गाँव की पाठशाला, कौसानी वर्नाक्यूलर स्कूल की 'ब' कक्षा में पंत का नाम लिखवा दिया गया। पंत को सर्वप्रथम कापी में 1907 लिखने की याद है और याद है अपने मधुर छंद पाठ की, जिसके लिये स्कूल के इंस्पेक्टर ने एक पुस्तक पुरस्कार स्वरूप दी थी। इस पाठशाला में उनके फुफेरे भाई अध्यापक थे और उन्हें गोद में उठाकर पाठशाला ले जाया करते थे। परन्तु स्कूली शिक्षा का महत्व उनके जीवन में उतना नहीं रहा जितना कौसानी की प्रकृति का। बच्चों के विकास और शिक्षा के लिये प्रकृति को अनिवार्य शिक्षक मानते हैं। एक बार आकाशवाणी वार्ता में उन्होंने कहा- "बचपन में

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१८

मुझे पुस्तकों से कहीं अधिक कौसानी की हंसमुख चंचल हरियाली ने और स्वच्छ नीले आसमान ने सिखाया है। मेरे मन में उसने अपनी स्वच्छता और सुन्दरता की अमिट छाप लगा दी है। मैं बराबर सोचा करता हूँ कि बच्चों को प्रकृति के खुले आंगन में अपना अधिक समय बिताना चाहिये।¹⁴ उनका शिक्षारम्भ उनके कवि व्यक्तित्व के प्रस्फुटन और विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियों में हुआ, परन्तु फिर भी पुस्तकों में उनका मन अधिक नहीं रमता था-

कौसानी की ग्राम पाठशाला
में मेरा

शिक्षारम्भ हुआ, वे कैसे मधुर
वर्ष थे

पाठों से थी कहीं अधिक रूचि
गिरिस्त्रोतों के

फेनिल कलरव में, वन क्षितिजों
के मुकुलों में

उचक चौकड़ी भरते भूरे गिरि
हिरनों में

गुल्म झाड़ियों बीच फुदकते
शिशु खरहों में।¹⁵

नौ वर्ष के होते-होते पंत को अमरकोश, मेघदूत, रामरक्षास्त्रोत, चाणक्य नीति आदि के अनेक श्लोकों का ज्ञान हो गया था, संस्कृत का ज्ञान फूफा जी ने करवाया और श्री अम्बादत्त जोशी ने उन्हें पर्शियन पढ़ाई, अंग्रेजी उनके पिता जी पढ़ाते थे क्योंकि स्कूल में अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती थी। इसी समय घर पर उन्हें संगीत का अभ्यास भी कराया जाता और वे भैरवी, पीलू, काफी, खमाज, केदारा, कल्याण, देस विहाग आदि रागों को जान गये। स्कूल के लड़कों अथवा भाइयों के साथ खेल में वे बहुत कम सम्मिलित होते। उनका बचपन अधिकांशतः घर-आंगन में ही बीता- "एक जन्मजात अर्न्तदृष्टि के

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१९

कारण बचपन से ही पंत को अपने स्वभाव के साथ अज्ञात भाव से सदैव उलझना पड़ा और इसी ने उनके बचपन को गंभीर, यौवन को संयमित तथा प्रौढ़ावस्था को शान्त एवं चेतनामय बनाया है।¹⁶

अल्मोड़ा के सरकारी हाईस्कूल से नवीं कक्षा पास करके सत्रह-अट्ठारह वर्ष की अवस्था में वह अपने भाई देवीदत्त पंत के साथ बनारस गये तथा वहाँ के जयनारायण हाईस्कूल से सन् 1919 ई० में उन्होंने स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट परीक्षा उत्तीर्ण की, यहीं पर पहले एक बंगाली मित्र के द्वारा उनका परिचय रविन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं से हुआ और उन्होंने बंगला भी सीखी।

साहित्यकार बनने की चाह, प्रथम की उर्वर साहित्यिक भूमि में रहने की लालसा, उस कॉलेज में पढ़ने का उत्साह, जहाँ उनके मझले भाई (रघुवरदत्त) शिक्षा प्राप्त कर चुके थे- के साथ जुलाई 1919 ईसवी में पंत जी ने प्रयाग की शांत, संस्कृत साहित्यिक भूमि में प्रवेश किया जहाँ वह म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में एफ०ए० कक्षा में भर्ती हुए। प्रयाग पंत जी को सब भाँति अच्छा लगा (इतना इच्छा लगा कि बाद में भी अपने जीवन का अधिकांश समय उन्होंने प्रयाग में ही बिताया।) हिन्दू छात्रावास, कॉलेज, अध्यापक वर्ग, साहित्यिक वातावरण के साथ ही इक्के या ताँगे में घूमना, नौका विहार करना तथा चलचित्र देखना आदि। हिन्दू छात्रावास उस समय का वह प्रतिष्ठित स्थान था जिसमें रहने के कारण पंत जी बहुतों के सम्पर्क में आये- रामचंद्र टंडन, परशुराम चतुर्वेदी, इकबाल, कृष्ण कपूर, जस्टिस कैलाशनाथ वांचू, डॉ० पुरुषोत्तम पाण्डेय, बाबूराम सक्सेना, धीरेन्द्र वर्मा, अवधेश प्रताप सिंह तथा रघुपति सहाय फिराक आदि। कौसानी के बाद उन्हें अपनेपन तथा खुलेपन का अनुभव इलाहाबाद में ही हुआ।

सन् 1919 ईसवी में विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के अवसर पर छात्रावास में प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय द्वारा संयोजित एक कवि गोष्ठी में तब पंत जी ने पहली बार मंच पर अपनी मधुर कविता का पाठ किया तो मानो उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही तरंगित हो उठा हो,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२०

जिसने उपस्थित समाज को मंत्रमुग्ध कर दिया। प्रो० शिवाधार पाण्डेय तो पंत जी से इतने प्रसन्न हो गये कि उन्होंने दूसरे ही दिन पंत जी को शेरशाहीयर के सम्पूर्ण नाटक का एक सुन्दर सचित्र मूल्यवान् संस्करण अपनी ओर से उपहार स्वरूप दिया और उसके पहले पृष्ठ पर अंग्रेजी साहित्य के प्रति अनुराग रखने का आदेश दिया। यह उपहार आशीर्वाद था।

सन् 1920 ईस्वी में श्री हरिऔध जी के सभापतित्व में जैन छात्रावास द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में पंत जी ने अपनी 'छाया' शीर्षक एक लम्बी रचना पढ़ी। हरिऔध जी तो सुनकर इतने मुग्ध तथा स्नेहाई हो उठे कि अपने गले की फूलों की माला उन्होंने पंत जी के गले में डाल दी। ऐसी अनेक सफलताएं इस बीच पंत जी को मिलीं।

प्रयाग के साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण तथा काव्यपाठ की सफलताओं ने पंत जी में एक स्वस्थ प्रेरणा और कला तथा भाव बोध को जन्म दिया। वे मनोयोग के साथ साहित्य की ओर झुके और अपने साहित्य सृजन के दायित्व को गम्भीरता तथा पूर्णता के साथ निभाने के लिये कटिबद्ध हो गये। उन्होंने सदैव ही कवि जीवन को साधना का जीवन माना। उनके लिये साहित्य का मार्ग यश या अर्थ का मार्ग नहीं था, न वह अहं की परितृप्ति का ही साधन था, वह वांछनीय तथा महान होने के साथ ही उनके भावानुकूल था, उसको अपनाया अपनी ही आत्मा को अपनाना था।

पाँडिचेरी में पंत ने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया। 'स्वर्णभूलि' में संग्रहीत वैदिक ऋचाओं का अनुवाद उनके इसी अध्ययन का परिणाम है। दक्षिण प्रवास काल में उनका सुप्त सृजन-संचरण फिर से जाग्रत हो उठा और तब से उनका मन निरन्तर उद्बुद्ध तथा सृजनशील बना रहा।

सन् 1950 ईसवी में ऑल इण्डिया रेडियो ने पंत जी को हिन्दी के चीफ प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त किया। इतना प्रोत्साहन पंत को अपने कवि-जीवन के निर्माण के लिये पर्याप्त था और उन्होंने इसका

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२१

उचित उपयोग भी किया।

कॉलेज से विदा :

सन् 1921 गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का समय था। अपने बड़े भाई के अनुरोध से वे उनके साथ आनन्द-भवन में गांधी जी का भाषण सुनने गये तथा उन्होंने (भाई) द्वारा प्रेरित पंत को भी असहयोग के लिये अपना हाथ उठाना पड़ा। इस प्रकार विद्यालयी शिक्षा से विदा लेकर वे जीवन की पाठशाला में संसार की महान पुस्तक के अध्ययन में रत हो गये। राजनीति में उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया। इन दिनों पंत पूर्ण अन्तर्द्वन्द की मनःस्थिति से होकर गुजर रहे थे। उनका कवि मन काव्य सृजन के साथ आत्मोन्नयन व सामाजिक उत्थान आदि समस्याओं पर सोच विचार कर कला-शिल्प में परिपक्वता लाने के प्रयास में संलग्न था। बौद्धिक संघर्ष के साथ उन्हें भौतिक संघर्षों का सामना भी करना पड़ा। इस मनःस्थिति की अभिव्यक्ति उनके काव्य में अनेक स्थानों पर हुई है। उनके अनुसार “इक्कीस वर्ष की अवस्था में कॉलेज छोड़ने के बाद ही मैंने साधारण अर्थ में जिसे जीवन कहते हैं, उसके द्वार अपने लिए सदा के लिये बंद कर अपने को संसार में बड़ा ही अकेला पाया।”¹⁷ उनके अकेलेपन के संबंध में कवि बच्चन लिखते हैं- “सड़क पर उन्हें अकेले चलते देखना कठिन है सदा किसी न किसी के साथ ही रहे हैं। कभी कभी उनको देखकर मैं सोचता हूँ कि जिस व्यक्ति को साथ की इतनी आवश्यकता थी उसने अपने अकेलेपन की कितनी भारी कीमत दी है”¹⁸ परन्तु उनका यह तथाकथित अकेलापन मानसिक संघर्ष, वैचारिक मंथन, पारिवारिक अस्तित्व के विघटन का अकेलापन था। अकेलापन जो जीवन को उसकी व्यापकता में पहचानने का तथा जीवन और मृत्यु को समझने को उसकी व्यापकता में पहचानने का तथा जीवन और मृत्यु को समझने में संघर्षरत था। इस अकेलेपन की भावना ने उनके मन को भीतर-बाहर दोनों ओर अत्यन्त व्यथित कर दिया। स्वयं पंत की यह स्वीकारोक्ति है कि युवावस्था में यदि उन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२२

होतीं तो वे अवश्य विवाहित जीवन व्यतीत करते दीखते परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल हो जाने पर भी उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? शायद इसलिए कि उस समय वे इस समय की भावातिरेक मानसिक स्थिति का मूल्यांकन पूर्णरूपेण करने में सफल हो सके और ‘एकाकीपन का अधिकार’ और विषाद के पार देखने में समर्थ हो सके तथा उनकी चेतना सुख-दुःख से ऊर्ध्वतर संचरण करने में सफल हो सकी। इस सम्बन्ध में उनकी जीवनीकार ‘शान्ति जोशी’ ने तटस्थता अपनाते हुए कहा- “खुलने के अर्थ में पंत का आज भी कोई मित्र है, अपना है, कहना कठिन ही है। मन से वे सदैव एकाकी ही रहे हैं।”¹⁹ उनकी रागभावना प्रेमलोक-मंगल और मानव कल्याण के मनःस्वप्न और आकांक्षा में परिवर्तित हो गयी। जिसकी प्रतिस्थापना उन्होंने ‘ज्योत्स्ना’ में भाव और शिल्प के माध्यम से की है तथा ‘लोकायतन’ संस्कृति पीठ द्वारा इसकी मूर्त स्थापना का भी प्रयत्न किया तो प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सफल न हो सका।

रेडियो में नियुक्ति :

सन् 1950 ईसवी में ऑल इण्डिया रेडियो ने पंत जी को हिन्दी के चीफ प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त किया। अपने दर्शन को कला की सहायता से जीवन तथा व्यवहार में लाने का आग्रह उनके मन में सन् 1942 ईसवी से ही था। जब उन्होंने ‘लोकायतन’ नामक संस्था की योजना बनायी थी। अनेक विफलताओं के बावजूद सन् 1948-49 में उसे ‘लोकायतन’ नाम से चलाने के लिये वे विशेष रूप से प्रयत्नशील हुये, पर दूसरी बार भी उन्हें सफलता नहीं मिली। ऐसे समय में रेडियो की नियुक्ति का उन्होंने यह सोचकर सहर्ष स्वागत किया कि इस माध्यम से वे अपने विचार अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा सकेंगे। इस प्रकार पंत जी सर्वप्रथम अपने जीवन में सरकारी वेतन-भोगी बने। राज्य की नीति और समय के बंधन में रहकर उन्होंने काम शुरू किया। सन् 1950 ईसवी से 1954 ईसवी के बीच रेडियो से प्रसारित होने के लिये बारह रूपक लिखे। उन्होंने अत्यन्त परिश्रम के साथ

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२३

आकाशवाणी के कार्यक्रमों का संस्कार-परिष्कार किया तथा उसे भारतीय संस्कृति का उपयुक्त माध्यम बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया। श्री बालकृष्ण राव के शब्दों में- “पन्त जी के व्यक्तित्व और जीवन की गतिविधि पर ही नहीं, उनके काव्य पर भी उनके रेडियो से सम्बन्ध स्थापन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।”²⁰ इन रूपकों में भावना कर्म और चेतना के किसी भी पक्ष को अछूता नहीं छोड़ा है। उनमें विविधांग-जीवन एवं दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक सत्यों का जीवन्त चित्रण हुआ है। इन रूपकों में प्रस्तुत सन्यासी, तत्त्वज्ञानी, समाज-सुधारक, कलाकार, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, श्रमजीवी आदि वर्गों की, वर्तमान विश्व स्थिति के अनुरूप यथातथ्य व्याख्या उनके निष्पक्ष चिन्तन, गहन अध्ययन, अनुभूति तथा जीवन-दृष्टि को प्रतिबिम्बित करती है।

साहित्यिक सम्मान एवं पुरस्कार :

सुमित्रानन्दन पंत की ख्याति एक महाकवि के रूप में फैली हुई है तथा उन्हें श्रेष्ठतम कवियों में एक अद्वितीय स्थान प्राप्त है। कवि के रूप में अनेकों प्रकार के सम्मान उन्हें प्राप्त हुये। उनकी काव्यकृति ‘कला और बूढ़ा चाँद’ के लिये उन्हें ‘साहित्य अकादमी’ द्वारा पांच हजार रुपये का पारितोषिक प्रदान किया गया। जनवरी 1961 ई० में भारत सरकार ने उन्हें उनकी महत्वपूर्ण साहित्यिक सेवाओं के लिये ‘पद्म भूषण’ की राष्ट्रीय उपाधि से विभूषित किया। 26 मार्च सन् 1965 को उत्तर प्रदेश शासन ने पंत जी को उनके साहित्य एवं कृतित्व पर 10,000 रुपये का पुरस्कार दिया। 15 नवम्बर सन् 1965 ई० को पंत जी को लोकायतन के लिये सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार (प्रथम साहित्यिक पुरस्कार) मिला। सन् 1968 ई० में ‘चिदम्बरा’ के लिये भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार भी उन्हें अर्पित किया गया।

महाप्रयाण :

सुमित्रानन्दन पंत जी की कल्पना वृद्धावस्था में भी जीर्ण-शीर्ण और दयनीय नहीं हो पायी थी। उनकी अप्रतिम प्रतिभा से निरन्तर नवीन

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२४

स्वर एवं अभिनव चेतना के पुष्प हिन्दी साहित्योद्यान में खिलते ही रहे। अचानक मामूली सी अस्वस्थता में ही इलाहाबाद (उनका सर्वाधिक प्रिय स्थान) में 28 दिसम्बर सन् 1977 ई० को उनका प्राणान्त हो गया और ‘नये संकट’ नामक रचना अधूरी ही रह गयी किन्तु ऐसे यशःकाय व्यक्ति मरकर भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अमर रहते हैं।

सन्दर्भ

1. सुमित्रानन्दन पंत, प्रवेशिका, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, पृ. 11
2. सुमित्रानन्दन पंत, अतिमा, राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, पृ० 69
3. वही, पृ० 70
4. सुमित्रानन्दन पंत, शिल्प और दर्शन, प्रथम संस्करण, पृ० 185
5. सुमित्रानन्दन पंत, साठ वर्ष : एक रेखांकन, पृ० 14
6. सुमित्रानन्दन पंत, अतिमा, पृ० 135-36
7. सुमित्रानन्दन पंत, वीणा, पृ० 90
8. सुमित्रानन्दन पंत, ग्रन्थि, पृ० 07
9. सुमित्रानन्दन पंत, वाणी (आत्मिका), पृ० 111
10. सुमित्रानन्दन पंत, अतिमा, पृ० 136
11. सुमित्रानन्दन पंत, जीवनी और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ० 37
12. सुमित्रानन्दन पंत, स्वर्ण किरण, पृ० 15
13. सुमित्रानन्दन पंत, जीवनी और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ० 62
14. वही, पृ० 45
15. सुमित्रानन्दन पंत, गन्धवीथी काव्य संकलन, पृ० 49
16. सुमित्रानन्दन पंत, जीवनी और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ० 51
17. सुमित्रानन्दन पंत, साठ वर्ष : एक रेखांकन, पृ० 29
18. सुमित्रानन्दन पंत, कवियों में सौम्य संत, पृ० 57
19. सुमित्रानन्दन पंत, जीवनी और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ० 357
20. सुमित्रानन्दन पंत, स्मृति चित्र, इलाचन्द्र जोशी, पृ० 144

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२५

द्वितीय अध्याय साहित्य साधना

पंत जी विचार-वैभव के अध्ययन की आधार-सामग्री के परिचय के रूप में उनकी साहित्यिक कृतियों से सम्बन्धित कुछ संक्षिप्त विवरण यहाँ रचना के यथाज्ञात कालक्रम से दिये जा रहे हैं। उनकी रचनाओं को गद्यात्मकता तथा पद्यात्मकता की दृष्टि से, विभिन्न साहित्यिक विधाओं की दृष्टि अथवा प्रतिपाद्य विषय-वस्तु की दृष्टि से वर्गों में विभाजित करके उनका विवरण प्रस्तुत करने के स्थान पर रचना के काल-क्रम से उनकी साहित्यिक कृतियों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकार के विवरण से पंत जी की मानस-यात्रा के विभिन्न मोड़ों, पड़ावों और गन्तव्यों का क्रमिक और अधिक सार्थक परिचय प्रस्तुत हो सकेगा।

‘हार’ :

यह उपन्यास सन् 1960 ईसवी में प्रकाशित हुआ, यद्यपि यह पंत जी की प्रथम रचना है। इसका रचनाकाल सन् 1916-17 ईसवी है। पंत जी की उपन्यास-कला का यह प्रथम तथा अन्तिम उपहार है, जिससे पंत जी की साहित्य-साधना का श्रीगणेश हुआ। यह कृति कतिपय बलात्मक न्यूनताओं से ग्रस्त होते हुए भी पंत जी के वैचारिक व्यक्तित्व के विकासात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि उसमें उनकी अन्तश्चेतना के मौलिक स्वरूप तथा उसके विकास की भावी सम्भावनाओं के संकेत मिलते हैं।

पंत जी के किशोर मानस की कला-सृष्टि-स्वरूप प्रेमालङ्कारों में गुँथा यह आख्यान अपने अन्तर में अत्यधिक प्रबुद्ध, विकसित और जाग्रत चेतना का आभास देता है और छुआछूत, देश-प्रेम एवं नारी-जीवन सम्बन्धी अनेक सामयिक समस्याओं का चित्रण करते हुए ‘गीता’ के अनासक्ति योग तथा कर्मयोग की झलक प्रस्तुत करता है।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२६

‘हार’ का कथानक छोटा सा है। दो मुख्य पात्रों निमेष और भविष्य तथा तीन मुख्य पात्रियों विजया, सुफला और आशा के पारस्परिक वार्तालाप, स्वगत-अलाप तथा प्रकृति के जीवंत चित्रण द्वारा कथानक भविष्य तथा आशा की बाल-क्रीड़ाओं से आगे बढ़कर उनके पारस्परिक आकर्षण और प्रेम के निकट पहुँचकर एकाएक त्रिकोणीय संघर्ष में फँस जाता है। निमेष, जो विजया का पति है, आशा पर आसक्त हो जाता है और आशा का भविष्य के प्रति अप्रस्फुटित प्रेम निमेष के प्रति आसक्ति में बदल जाता है। भविष्य का आशा के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है। जब उसे आशा की मनोदशा मालूम होती है तो वह विरह-दग्ध हो जाता है। दुःख के अथाह सागर में डूबे हुए उन्मत्त भविष्य को पुजारी की शरण में ले जाकर दोनों के बीच प्रश्नोत्तर के माध्यम से आसक्ति और प्रेम, क्षणिक सुख और वास्तविक सुख एवं विश्व-प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालकर किशोर उपन्यासकार ने सहज स्वभाव का दिग्दर्शन कराया है।

वीणा

यद्यपि यह काव्य-संग्रह सन् 1927 ई. में प्रकाशित हुआ, परन्तु इसमें प्रायः सन् 1918 से 1919 तक (पल्लव काल के पहले) की रचनायें हैं। ‘वीणा’ के रचना-काल के बारे में पंत जी का कहना है— “इसमें अधिकतर मेरी सन् 1917 से 1919 ई. तक की प्रारम्भिक रचनायें संग्रहीत हैं। कुछ रचनायें 1916-17 की भी हैं जिन्हें मैंने सन् 1918 में संवारकर ‘वीणा’ में सम्मिलित कर दिया था। इनमें से दो-चार पद मेरे ‘हार’ नामक उपन्यास में उद्धृत मिलते हैं। ‘वीणा’ की और भी कुछ रचनायें सन् 1916-17 ई. के आसपास लिखी गयीं थीं— जैसे ‘यह दुख कैसे प्रकटाऊँ’, ‘जब मैं कलिका ही थी केवल’, ‘हाय, कहेगा क्या संसार’, ‘काला तो यह बादल है’ आदि। ‘वीणा’ में ‘कौन, कौन तुम परिहत बसना’ शीर्षक एक छोटा-सा प्रगीत है जो पीछे सन् 1920 में ‘छाया’ नामक लम्बी रचना में विकसित होकर ‘पल्लव’ में सम्मिलित कर दिया गया तथा “कैसा नीरव मधुर राग

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/२७

यह 'प्रगीत 'पल्लव' में 'स्वप्न' शीर्षक (1919) मेरी प्रसिद्ध रचना में पल्लवित हुआ। इसी प्रकार 'मधुरिमा के मृदु हंस' की कुछ पंक्तियाँ आगे चलकर 'उच्छ्वास' शीर्षक से मेरी एक लम्बी रचना का अंग बन गयीं जो सन् 1921 की रचना है। इस प्रकार मेरी प्रारम्भिक रचनाओं की अनेक अस्फुट भावनाओं का विकास मेरी परवर्ती रचनाओं में अपने आप ही हो गया है।.....इन छोटे-छोटे प्रगीतों के अंचल में, मेरे छुटपन की अनेक निश्छल घटनाएँ बँधी हुई हैं।'¹

यों तो इस काव्यकृति को पन्त जी ने स्वयं दूधमुँहा प्रयास तथा बालकल्पना बताया है² तथा उनकी उन्नीस वर्ष की अवस्था तक की काव्यराशि ही इसमें सुरक्षित है। फिर भी पन्त जी की काव्य-वीणा की यह प्रथम झंकार ही उन्हें तत्कालीन (द्विवेदीयुगीन) काव्यप्रवृत्ति से सर्वथा पृथक् कर देती है। द्विवेदीयुगीन काव्य इतिवृत्तात्मक था। उसने नीरस, प्रेरणाविहीन, नैतिक, उपदेशात्मक विषयों को ही अधिकांशतः प्रश्रय दिया। 'वीणा' की कवितायें विषय की दृष्टि से उस समय की कविताओं से भिन्न हैं। इनमें भाव-प्राधान्य के साथ-साथ प्रकृति-प्रेम, रहस्यात्मक, कौतूहल, जिज्ञासा एवं दार्शनिकता का भी सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है।

'ग्रन्थि' :

'वीणा' की समकालीन रचना 'ग्रन्थि' है। दोनों के बारे में पन्त जी का कहना है- "इनकी शैली तथा भावभूमि में मैंने संभवतः बनारस में संचित अपने काव्य-संस्कारों को अपनी किशोर क्षमता के अनुरूप वाणी देने की चेष्टा की है। 'वीणा' के अधिकांशतः प्रगीत और 'ग्रन्थि' का लेखनकाल सन् 1919 ई० के मई-जून के माह हैं, और 'वीणा' की रचनाएँ 1918-1919 के बीच लिखी गयी हैं।'³ 'ग्रन्थि' का प्रकाशन-काल सन् 1929 है। यह एक वियोगान्त प्रेम-कथा है। प्रथम पुरुष में आत्मकथा के रूप में वर्णित इसकी कथा इस प्रकार है- एक बार सन्ध्या के समय नायक की नाव ताल में डूब गई। मूर्छा टूटने पर उसने देखा कि एक बालिका उसका सिर अपनी जाँघ पर रखे

हुए अधीर चिंतित दृष्टि से उसकी ओर देख रही है। नायक को उसकी मूकजा की आड़ में प्रणय का प्रथम परिचय पढ़ते देर नहीं लगती और वह भी उसके प्रेम-पाश में बन्दी होकर पहली बार अपने शून्य तथा व्यथित जीवन में अपनापन महसूस करता है। यह प्रणय-कहानी चलती है और नायक नायिका दोनों एक दूसरे के वियोग में व्याकुल समय व्यतीत करते हैं किन्तु कुछ समय बाद नायिका का ग्रन्थि बंधन अन्य किसी के साथ हो जाता है।⁴ निराशा एवं विषाद से विवश प्रेमी चीख उठता है।⁵

'ग्रन्थि' का यह भाग काव्य की दृष्टि से काफी महत्व रखता है। इसमें दर्शन, सौन्दर्य, प्रेम, स्मृति, आशा, उन्माद, आह, अश्रु, वेदना आदि विरह के उपकरणों पर सुन्दर उद्गार है जो प्रायः स्वतंत्र प्रतीत होते हैं। प्रेम, आशा तथा वेदना आदि के बारे में कवि की उक्तियों को देखकर आश्चर्य होता है कि किशोरावस्था में ही उसका अनुभव कितना व्यापक था। पन्त जी ने तो इस कथा का आधार काल्पनिक ही बताया है किन्तु इसमें प्रस्तुत विवरण इतने मूर्त हैं और कल्पना (अर्थात् इसमें अभिव्यक्त काल्पनिक अनुभूति भी) इतनी सजीव है कि वह यथार्थ प्रतीत होती है।

अन्त में कवि संसार के विशाल वैभव की रिक्तता का अनुभव करता हुआ "वेदना के इस मनोरम विपिन" में आकर सब भौंति सुख-सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार "पतन के नीले अधर पर भाग्य का निष्ठुर उपहास" दिखलाने के बाद कथा का अन्त हो जाता है।

यह रचना इस विचार का समर्थन करती है कि समय की दृष्टि से अपना औचित्य खो चुकी मध्ययुगीन नैतिकता के आधार पर खड़े समाज में सच्चा प्रेम व मानव का सुख असंभव है। इसे पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि पन्त जी ने प्रेम-विषयक कविताओं के क्षेत्र में कितनी बड़ी वैचारिक क्रान्ति की थी। द्विवेदी-युग में प्रेम, मिलन, विरह इत्यादि विषयों पर कुछ भी नहीं लिखा गया। यह वर्जित प्रदेश था। पन्त जी की इस रचना में पहली बार प्रेमी का अश्रु-गद्गद कंठ फूट पड़ा।

‘पल्लव’ :

सन् 1926 ईसवी में प्रकाशित ‘पल्लव’ का स्थान पन्त जी की काव्य-साधना में अत्यंत विशिष्ट है। इस कृति में पन्त जी की सन् 1918 ई. से लेकर सन् 1925 ई. तक की रचनायें संकलित हैं।

कई दृष्टियों से ‘पल्लव’ का प्रकाशन एक युगांतरकारिणी घटना थी। इसमें संग्रहीत 32 कवितायें पन्त जी के कवि-व्यक्तित्व की पृथक पहचान बनाने में समर्थ हुई थीं और उनके प्रकाशन को हिन्दी में छायावादी काव्यकृति का प्रस्थान-बिन्दु माना गया है।

‘ग्रंथि’ में जिस विरह की अभिव्यक्ति हुई थी, ‘पल्लव’ में वह और भी प्रौढ़ रूप में प्रकट हुई है। इस संकलन की ‘उच्छ्वास’ तथा ‘आंसू’ शीर्षक रचनाओं में प्रेम-भावना की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है। रीतिकालीन देहनिष्ठ प्रेम के स्थान पर इन कविताओं में नारी की दिव्यता से सिंचित सौन्दर्यानुभूति का चित्रण हमें देखने को मिलता है।

इसमें कुछ रचनायें भावावेग-प्रधान हैं जैसे ‘‘मोह’’, ‘विनय’, ‘वसन्त श्री’, ‘आकांक्षा’, ‘याचना’, ‘विश्वव्याप्ति’, ‘सोने का गान’, ‘विश्वछवि’, ‘नारी रूप’, ‘निर्झर गान’, ‘मुस्कान’, ‘मधुकरी’, ‘स्मृति’ तथा ‘छायाकाल’ आदि। कुछ रचनायें कल्पना-प्रधान हैं जैसे- ‘वीचिविलास’, ‘विश्ववेणु’, ‘नक्षत्र’ तथा ‘स्याही की बूंद’ आदि। पल्लव की शेष रचनायें वे हैं जिनमें कल्पना तथा भावों का संतुलन है जैसे- ‘मौन निमंत्रण’, ‘बालापन’, ‘छाया’, ‘बादल’, ‘अनंग’, ‘स्वप्न’ आदि।

‘पल्लव’ की भूमिका भी अपना स्वतंत्र महत्व रखती है। अपने नवीनतापूर्ण रचना-प्रयासों की जो सैद्धान्तिक विवेचना पन्त जी ने ‘पल्लव’ के प्रवेश में की है उसने साहित्य जगत में एक तूफान-सा उत्पन्न कर दिया था। खड़ी बोली की प्रकृति तथा उसके छन्दों की प्रवृत्ति का सूक्ष्म विवेचन करते हुए उन्होंने कहीं-कहीं व्याकरण की कड़ियाँ भी तोड़ीं।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३०

‘मधुज्वाल’ :

उमर खैय्याम की रूबाईयों का हिन्दी में रूपान्तर पंत जी ने सन् 1929 ई. में उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय असगर साहब गोंडवी की सहायता से किया था, किन्तु अनुवाद पूरा होने के साथ ही बीमार पड़ जाने के कारण न केवल ‘मधुज्वाल’ का प्रकाशन स्थगित हो गया वरन् इसकी पाण्डुलिपि भी खो गयी। पन्त जी के शुभचिन्तक रामचंद्र टंडन जी ने इसे बड़े प्रयास से खोज निकाला। पंत जी ने इसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन तथा संशोधन करके सन् 1947 ई. में इसे प्रकाशित कराया। उमर खैय्याम की रूबाईयों के अनुवाद में जो मांसल सौन्दर्य और प्रेम की तीव्रता मिलती है, उसे पंत जी ने ‘मधुज्वाल’ में अपनी ही कल्पना में लपेटकर सुन्दर प्रगीतात्मक रूप दे दिया है। उन्हें उमर की रूबाईयों में विचारों की प्रधानता तथा काव्यमय कल्पना का अभाव लगा और इस अभाव की पूर्ति के लिए ही उन्होंने ‘मधुज्वाल’ को अपने कल्पना सौन्दर्य से मण्डित कर अधिक सार्थक बना दिया।

‘गुंजन’ :

सन् 1932 ई. में प्रकाशित ‘गुंजन’ पंत जी की एक अन्य प्रौढ़ कृति है। इसमें उनकी सन् 1926 ईसवी से सन 1932 ईसवी तक की कवितायें संग्रहीत हैं। ‘गुंजन’ से हम पंत जी की रचनाओं में एक नया युगान्तर पाते हैं। इसमें कवि एक भावुक तरुण के रूप में नहीं, वरन् एक गम्भीर चिन्तक के रूप में दिखाई पड़ता है। ‘‘मैं और मेरी रचना गुंजन’’ शीर्षक अपने लेख में पंत जी ने लिखा है- ‘‘सन् 1925 से लेकर सन् 1930 ई. तक, इन पाँच वर्षों में, मेरा काव्यांश, जो अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणों से वस्तुपरक से धीरे-धीरे भावपरक हो गया, वह शायद स्वाभाविक ही था। इन भावपरक प्रगीतों का सर्वप्रथम संग्रह ‘गुंजन’ के नाम से सन् 1932 ई. में प्रकाशित हुआ। ‘पल्लव’ कालीन कल्पना-कोमल तथा वस्तुपरक कविताओं का ‘गुंजन’ की रचनाओं में एकदम कायापलट देखकर मेरे पाठकों को कुछ समय में आश्चर्यचकित, विचारमग्न अथवा मौन रहना पड़ा। पर मैं, जो कि अपने मानसिक

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३१

विकास के अन्तःसूत्र से भली-भाँति परिचित हैं, अपने काव्य के इस दिशा-परिवर्तन को विस्मय की दृष्टि से नहीं देखता। आगे चलकर ऐसे और भी नये क्षितिज मेरे भीतर खुले हैं जिन्होंने मेरी काव्य-कल्पना को नवीन दिशाएँ प्रदान की हैं।⁶

आगे भी जो उन्होंने कहा है- “मेरे जीवन-विकास में ये बड़ी अद्भुत बात हुई कि ‘पल्लव’ काल के समाप्त होते-होते, जब “यहाँ सुख, सरसों, शोक, सुमेरू” की धारणा के कारण मेरे भीतर जगजीवन के प्रति अत्यन्त विषाद तथा विरक्ति का दुःसह बोझ जमा हो गया था, तब जैसे अवसाद के भार के तीक्ष्ण दबाव के कारण मेरे भीतर एक अज्ञात आनन्द स्रोत फूट पड़ा, जिसने मेरा ध्यान ‘यही तो है असार संसार’ से हटाकर मन के भीतर प्रछन्न आनन्द-स्रोत की ओर आकर्षित कर दिया और इस अनुभूति ने जैसे ‘गुंजन’ के ‘सा रे गा म’ ही बदल दिये।

‘गुंजन’ में कुल 45 कवितायें हैं।

‘ज्योत्सना’ :

इस नाट्य कृति का रचनाकाल सन् 1932 ई. है। यह सन् 1934 ई. में प्रकाशित हुई। काव्य-रूप की दृष्टि से ‘ज्योत्सना’ एक नाटिका है, किन्तु इसमें नाटककार पन्त के कम, कवि पन्त के ही दर्शन अधिक होते हैं। इस भाव-नाटिका में अमूर्त भावों एवम् विचारों को मानवीय रूपों में प्रस्तुत किया गया है। पंत जी ने इस रूपकात्मक नाटिका में आदर्श समाज-व्यवस्था, ऊर्ध्व नैतिक चेतना तथा आध्यात्मिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में अपनी धारणा को रूपायित किया है। इस नाट्य-कृति की पात्री सुरभि के ये शब्द कि- “संसार में तामसी विनाश उठ जाये और यह सारी सृष्टि प्रेम की पलकों में अपने ही स्वरूप पर मुग्ध सौन्दर्य का स्वप्न बन जाये”⁷ पन्त जी की अपनी ही आकांक्षा को व्यक्त करते हैं। दार्शनिक जिस सत्य के दर्शन बुद्धि द्वारा करता है, कवि उसी सत्य को अनुभूति से सींचकर सजीव कर देता है।

‘पाँच कहानियाँ’ :

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३२

पन्त जी की कहानियों के इस संकलन का रचनाकाल सन् 1935 ई. है। इसका प्रकाशन सन् 1936 ईसवी में हुआ। कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से ‘पाँच कहानियाँ’ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इसमें ‘ज्योत्सना’ की विचारधारा ने समाज, परिवार, व्यक्ति तथा इहलोक एवम् परलोक सम्बन्धी एक स्वस्थ एवं संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उनके विचारानुसार प्रत्येक के निजत्व एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए सुसंगठित विकसित सामाजिक विधान की आवश्यकता है। लेखक ने अपनी तीव्र अन्तर्दृष्टि द्वारा वस्तुस्थिति, पात्र तथा उनके गूढ़ चरित्रों के भीतर झांकने का प्रयास किया है। पात्रों के मनोविश्लेषण के साथ-साथ कहीं-कहीं पंत जी का अपना व्यक्तित्व मुखर हुआ है। इसमें संक्षिप्त कलेवर में अत्यंत गंभीर जीवन-समस्याओं का निदर्शन अपने आप में विशिष्ट है। समाज की प्रचलित कुप्रथाओं तथा जर्जर रूढ़ियों पर यत्र-तत्र उन्होंने मार्मिक आघात भी किये हैं।

सभी कहानियाँ उनकी लेखन-परम्परा तथा विकास-क्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं तथा सिद्ध करती हैं कि पंत जी काव्य-सर्जना के अतिरिक्त वैचारिक गद्य की रचना में भी सक्षम हैं। यद्यपि ये कहानियाँ संख्या में पाँच ही हैं फिर भी इनसे पंत जी की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

“पानवाला” पन्त जी की पाँचों कहानियों में पहली और सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य चार कहानियाँ क्रमशः ‘उस बार’, ‘दम्पति’, ‘बनू’ तथा ‘अवगुण्ठन’ हैं। इन कहानियों में उनके साहित्यिक उद्गार के माध्यम में ही परिवर्तन नहीं आया है वरन् जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बदला हुआ प्रतीत होता है। ‘पानवाला’ कहानी में पीताम्बर के जीवन के सूक्ष्म तथा सफल रेखाचित्रण द्वारा पंत जी ने सामाजिकता के बोध को जाग्रत करना चाहा है। इस कहानी में नायक के वैयक्तिक जीवन के माध्यम से वर्तमान समाज के खोखले और निष्क्रिय स्वरूप का चित्र प्रस्तुत किया गया है। पीताम्बर जैसे न जाने कितने व्यक्ति हैं जिनके सुयोग्य जीवन का आर्थिक और रागात्मक

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३३

निर्धनता का कंकाल बनाने में समाज ने योग दिया है। साथ-ही-साथ लेखक ने गम्भीर वैचारिक तथा सैद्धान्तिक मीमांसा करते हुए अपनी वैयक्तिक धारणायें भी प्रस्तुत की हैं।

संकलन की दूसरी कहानी 'इस बार' है। सम्भ्रान्त कुल के कुछ विद्यार्थियों की रंगरेलियों और परिहास से ओत-प्रोत है। सम्भ्रान्त कुल के कुछ छात्रों के चित्रण द्वारा लेखक ने यह निर्देशित किया है कि प्रेम की अनुभूति और अभिव्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति में अपने स्वभाव के अनुरूप ही होती है— कोई गहराई तक जाता है तो कोई ऊपरी आकर्षण में खो जाता है। कुछ में भावात्मक स्थायित्व है तो कुछ में मात्र पानी की बुलबुलों—सी क्षणिकता।

तीसरी कहानी 'दम्पति' में पार्वती तथा उसके पति के माध्यम से दाम्पत्य जीवन के बनते और बिगड़ते हुए कुछ दृश्य अंकित किये गये हैं। अति सामान्य गृहस्थी में स्त्रैण पति और पति-प्रेम में मुग्ध पत्नी के जीवन की सहजता, स्वाभाविकता किन्तु विचार-बुद्धि-शून्यता से परिचालित परस्पर घुलमिल जाने की अनुभूति का सरस चित्रण हुआ है। इस दम्पति के बीच कुछ अधिक बातें या रसालाप नहीं होता था। दोनों केवल एक दूसरे की उपस्थिति के प्यासे थे। भाषा की गूढ़ता तथा विचारों की अमूर्तता कहीं भी कथा-प्रवाह को अवरुद्ध नहीं करती।

'बन्नु' इस संकलन की चौथी कहानी है। बन्नु, जिसे परिस्थिति ने बैरागी बना दिया है। केवल ज्ञान को विकसित करके जिसके रागतत्व को एक प्रकार से सुला दिया गया है, उसके चरित्र-चित्रण द्वारा लेखक ने ज्ञान और राग, त्याग और भोग एवं निवृत्ति और प्रवृत्ति के समन्वय पर प्रकाश डालकर सामाजिक दायित्व के महत्व को निरूपित किया है।

'अवगुंठन' शीर्षक कहानी साम्यवादी युवक सतीश के लौकिक व्यवहार-शून्य सैद्धान्तिक ज्ञान के अनुरूप आचरण तथा रामकुमार के स्वामित्व के अहं से संचालित, व्यक्तित्व के चित्रण द्वारा नारी के स्वतंत्र, आत्मप्रबुद्ध व्यक्तित्व को समझने की आवश्यकता पर बल देती

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३४

है। कहानी का पात्र रामकुमार अपनी नवविवाहिता सुन्दर पत्नी सरला को स्वतंत्र व्यक्तित्व को भूलकर उसको एक जड़ सम्पत्ति की भाँति अपने पूर्ण आधिपत्य का अंग बनाना चाहता है किन्तु अन्ततः रामकुमार को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि नारी का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और संस्कार होता है। वह किसी की अहं की तुष्टि के लिए हाथ का धिलौना बनाकर नहीं रखी जा सकती। एक महान् सत्य को जीवन की यथार्थता के भीतर से व्यक्त कर एवं उसे सरल जीवन की कहानी बनाकर पंत जी ने अपना बहुमुखी क्षमता का परिचय दिया है।

'युगान्त' :

इस काव्य-संकलन में सम्मिलित पंत जी की 33 कवितायें उनकी काव्य-यात्रा में आये एक विशिष्ट संक्रमण का संकेत देती हैं। इसमें केवल एक रचना को छोड़कर, जो सन् 1930 ई. की हैं, अन्य रचनायें सन् 1934-35 ई. की हैं। सन् 1936 ई. में प्रकाशित 'युगान्त' मानो पंत जी के काव्यजीवन के छायावादी युग का अन्त और प्रगतिशील युग का प्रवेश-द्वार है। पंत जी के ही शब्दों में— "उस समय प्रथम महायुद्ध के बाद जो पश्चिमी आदर्शवादी विचारधारा को आघात लगा तथा रूसी क्रान्ति के फलस्वरूप जिस नवीन सामाजिक यथार्थ की धारणा की ओर धीरे-धीरे ध्यान आकर्षित होने लगा और साथ ही वैज्ञानिक युग ने हमारे मध्ययुगी निषेधात्मक दृष्टिकोण के विरोध में जिस नवीन भावात्मक दर्शन को जन्म दिया, उसे सबकी प्रतिक्रिया-स्वरूप विश्व-जीवन तथा मानव-जीवन के प्रति युग के विचार एवं भावना-जगत् को मैंने अपने बदलते हुए दृष्टिकोण के अनुरूप, तब 'युगान्त' नामक अपने काव्य-संग्रह तथा पाँच कहानियों में अभिव्यक्ति दी है।"¹⁸

'युगवाणी' :

सन् 1939 ई. में प्रकाशित इस कृति का रचनाकाल सन् 1937-38 ईस्वी है। इस संग्रह की समस्त 82 कविताओं में जीवन की यथार्थ वास्तविकता की प्रखर चेतना अभिव्यक्त हुई है। पंत जी ने अपनी पत्रिका 'रूपाभ' के सम्पादकीय (सन् 1938 ईस्वी) में घोषित

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३५

किया था कि "इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती, उसकी जड़ों का अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।"⁹ आधुनिक विश्व के अनेक मतवादों में निहित जनहित के सुन्दर तथ्यों को उन्होंने चुन-चुनकर अपनी रचनाओं में वाणी दी और वह केवल कवि ही नहीं विचारक भी बन गये। उनके स्वर में युग की वाणी बोलने लगी। मानवता को बंधन-मुक्त कर आत्मा, मन, ज्ञान-विज्ञान तथा कला के समस्त साधन उसके लिए सुलभ करा देना ही उन्हें सबसे बड़ा पुरुषार्थ प्रतीत होने लगा।

इस संकलन की कविताओं में केवल भाषा और शैली की ही नवीनता नहीं है, कवि जीवन के नये तत्वों को भी खोलते हुए आगे बढ़ा है। रूमानि, छायावादी तथा रहस्यवादी प्रवृत्तियों के विपरीत 'युगवाणी' जीवन को उसकी नग्नता, मलिनता, जर्जरता, विषमता, कटुता, दयनीयता आदि के यथार्थ सन्दर्भों में चित्रित करती है-

“बने विश्व-जीवन की स्वर लिपि

तन मन मर्म कहानी

कवि की वाणी।”¹⁰

'युगवाणी' की अनेक रचनायें मार्क्सवाद तथा गांधीवाद के प्रति पंत जी की निष्ठा को प्रकट करती हैं। उन्हें गांधीवाद का अन्तःविकास तथा समाजवाद का बाह्य विकास प्रिय लगा किन्तु इन दोनों की एकांगिता उन्हें उचित नहीं लगी। अतः उन्होंने समाजवाद तथा गांधीवाद के समन्वय पर बल दिया है।

लोकहित या मानवहित को दृष्टि में रखकर लिखी गई 'नवदृष्टि', 'नव संस्कृति', 'युग-उपकरण', 'भव-संस्कृति', 'आवाहन', 'पतझर', 'जीवन-मांस', 'प्रकाश', 'जीवनस्पर्श', 'मधु के स्वप्न', 'मुझे स्वप्न दो', 'मन के स्वप्न', 'लेन-देन', 'कृष्णघन' तथा हरीतिमा' आदि कवितायें उल्लेखनीय हैं।

इस संग्रह में 'गंगा की सांझ', 'गंगा का प्रभात', 'सुमन के प्रति', 'आम्र विहग', 'प्रकृति के प्रति', 'पलाश', 'पलाश के प्रति',

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३६

'बदली का प्रभात', 'दो चित्र', 'झंझा में नीम', 'ओस के प्रति', 'ओस बिन्दु', 'कृष्णघन', 'जलद', 'कुसुम के प्रति' आदि रचनायें प्रकृति से सम्बन्धित हैं।

'स्वर्णधूलि' :

इस संकलन का प्रकाशन भी सन् 1947 ई. में ही हुआ और इसमें सन् 1946-47 में रची हुई 80 कवितायें संग्रहीत हैं। इन रचनाओं में पंत जी ने दर्शन के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत किया है। इसमें कुछ 'आर्षवाणी' शीर्षक के अन्तर्गत वैदिक ऋचाओं के पद्यानुवाद भी हैं। शेष रचनाओं को निम्नलिखित कोटियों में रखा जा सकता है-

(1) सामाजिक

'पतिता', 'परकीया', 'ग्रामीण', 'गणपति उत्सव', 'स्वप्न देही', 'क्षणजीवी', 'मनुष्यत्व', 'साधना'।

(2) सैद्धान्तिक

'सामंजस्य', 'आजाद', 'लोकसत्य', 'आशंका', 'स्वप्न निर्मल', 'मृत्युंजय', 'चौथी भूख', 'अन्तिम पैगम्बर', 'छाया', 'अन्तर्विकास', 'मुक्तिबंधन'।

(3) आवाहन तथा अभिवादन सम्बन्धी

'युगागम', 'जातिमन', 'भावोन्मेष', 'आह्वान', 'नववधू के प्रति'।

(4) प्रकृति विषयक

'सावन', 'तालकुल', 'शरद चाँदनी'।

(5) प्रणय विषयक

'हृदय-तारुण्य', 'प्रणय-कुंज', 'मर्मकथा', 'मर्मव्यथा-गोपन'।

(6) विनयपरक

'प्रणाम', 'आर्त', 'मातृचेतना', 'मातृशक्ति', 'लक्ष्मण'।

(7) मानसिक स्थिति का वर्णन

'छाया दर्पण', 'दिवास्वप्न', 'प्राणाकांक्षा', 'अन्तर्लोक', 'स्वर्ण-अप्सरी'।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३७

(8) भक्ति विषयक तथा आध्यात्मिक

‘साधना’, ‘आह्वान’, ‘अर्वाणी’, ‘ज्योतिर्हर’, ‘स्वर्गअप्सरी’, ‘प्रीतिहर’, ‘दिवास्वप्न’ तथा ‘चेतन’।

कथोपकथन की शैली अथवा कथा-शैली को अपनाने वाली ‘स्वर्णधूलि’ की कविताओं ने विचारों तथा भावनाओं को जीवन की तरलता दे दी है। ‘स्वप्न-निर्मल’, ‘लोकसत्य’, ‘सामंजस्य’ में माधव और यादव के पारस्परिक संवाद द्वारा पंत जी ने युग-विचारों का संघर्षण एवं भावसत्य (अध्यात्मवाद) और वस्तुसत्य (भूतवाद) की एकांगिता को समन्वित कर उन्हें व्यापक आत्म सत्यता प्रदान की है।

‘स्वर्णधूलि’ संग्रह के अंत में ‘मानसी’ शीर्षक रूपक है जिसके द्वारा स्त्री तथा पुरुष के प्रेम-सम्बन्ध पर विचार किया गया है। यह सात दृश्यों का पद्यबद्ध एकांकी नाट्य रूपक है। इसमें चार प्रकार की नारियों का चित्रण किया गया है (1) रूढ़िवादिनी, (2) गोपी, (3) भिक्षुणी, (4) आधुनिका। पंत जी ने गोपी तथा भिक्षुणी को जीवन की दो सीमाओं का नाम दिया है। इन दोनों सीमाओं- भोग तथा त्याग के बीच ही जीवन की स्थिति है। इसके सातवें दृश्य में जीवन का आदर्श ‘श्रम’ कहा गया है। वहाँ स्पष्ट किया गया है कि नर-नारी के प्रणय की सार्थकता इस बात में है कि वे स्वर्ग की चिन्ता छोड़कर धरती से अनुराग करना सीखें और श्रमिक बनकर पृथ्वी की अस्वच्छता को दूर करें। अन्त में मंगलकामना की गई है।

‘युगान्तर’ :

यह सन् 1948 ईसवी में प्रकाशित काव्य-संग्रह है। इसमें उस समय की पंत जी की 49 नवीन रचनाएँ हैं। इनमें से अधिकांश महात्मा गांधी के निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति में लिखी गयी थीं। गांधी जी के व्यक्तित्व के प्रति पंत जी पूर्ण-रूप से नमस्तक थे। इस संग्रह के प्रारम्भ में बापू को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके सिद्धान्तों को प्रकाशित किया गया है। गांधी जी तथा रवीन्द्र के साधन भिन्न थे किन्तु साध्य एक ही था। कवि ने इन दोनों महापुरुषों के अतिरिक्त भगवान्

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३८

राम और योगी अरविन्द जैसे आध्यात्मिक नायकों का साक्ष्य अपनी जीवन-दृष्टि के समर्थन में प्रस्तुत किया है। अपनी इन रचनाओं के द्वारा भी पंत जी ने मानवता के कल्याण की साधना को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है।

“युगान्तर” की कविताओं को निम्नांकित कोटियों में रखा जा सकता है-

(1) युगनायकों से सम्बन्धित

‘श्रद्धा के फूल’ (संग्रह के प्रारम्भिक 16 गीत जो बच्चन जी के साथ ‘खादी के फूल’ शीर्षक से भी सन् 1948 ई. में प्रकाशित हो चुके थे।) ‘श्री अरविन्द के प्रति’, ‘श्रद्धांजलि’, ‘अवतरण’, ‘कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति’, ‘डॉ० अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के प्रति’, ‘मर्यादापुरुषोत्तम के प्रति’।

(2) आध्यात्मिक चेतना सम्बन्धी

‘जिज्ञासा’, ‘स्वप्न पूजा’, ‘प्रकाशक्षण’, ‘करुणाधारा’, ‘शोभा जागरण’, ‘मानसी’, ‘स्वप्नगीत’, ‘रंग दो’, ‘त्रिवेणी’।

(3) राष्ट्रीय

‘जय जनभारत’, ‘जय आभा रत’, ‘जय जनभार, जन मन अभिमत’, ‘स्वतंत्रता दिवस’, ‘जयगान’, ‘जागरणगीत’, ‘उद्बोधन’, ‘जागरण’।

(4) मानव-आदर्श तथा मानव-कल्याण से सम्बन्धित-

‘वह मानव क्या!’, ‘युगान्तर’, के अन्तर्गत ‘त्रिवेणी’ शीर्षक रूपक है जिसमें पंत जी ने अपने युग सम्बन्धी विचारों को गंगा, यमुना तथा सरस्वती के लोकसुलभ प्रतीकों के माध्यम से सुगमतापूर्वक व्यक्त किया है। इस रूपक में जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है।

‘उत्तरा’ :

पंत जी की ‘उत्तरा’ सन् 1949 ईसवी में प्रकाशित कृति है जिसमें उनकी 75 कवितायें संग्रहीत हैं। ‘उत्तरा’ की अधिकांश रचनाओं

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/३९

का स्वर भाववादी है। इन रचनाओं में कवि ने अपनी चेतना तथा प्रेरणाओं को भावजगत में उतारकर लोक से यह आकांक्षा की है कि वह अपने अन्तर्जगत की ओर ध्यान दे; उस सौन्दर्य-राशि की ओर ध्यान दे जो नूतन दृष्टि के वातायनों से विश्व में बिखरी पड़ रही है।

'उत्तरा' की कविताओं को निम्नांकित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) प्रार्थना सम्बन्धी

'जगत घन', 'युगदान', 'जीवनदान', 'नमन', 'मानव-ईश्वर', 'स्तवन', 'प्रणति', 'रंगमंगल'।

(2) आवाहन और प्रोत्साहन सम्बन्धी

'नव-मानव', 'परिचय', 'जागरण-गान', 'भू-वीणा', 'उद्बोधन', 'मौनसृजन', 'आह्वान', 'अवगाहन'।

(3) प्रतीकात्मक

'अन्तर्व्यथा', 'उन्मेष', 'आगमन', 'प्रीति', 'मेघों के पर्वत', 'जीवन उत्सव', 'भू-जीवन', 'मौन गुंजन', 'निर्माण-काल', 'आवाहन', 'ममता'।

(4) युग-विषाद सम्बन्धी

'युग-विषाद', 'प्रगति', 'उद्दीपन', 'अभिलाष', 'अनुभूति', 'गीत-विहग', 'वैदेही'।

(5) गूढ़ मानसिक स्थितियों का चित्रण

'मनोमय', 'संवेदन', 'स्वप्न-क्रांत', 'उन्मेष', 'स्वर्णविभा', 'भू-स्वर्ग', 'शोभा-क्षण', 'स्वप्न-वैभव', 'छायासरिता', 'आभास्पर्श', 'प्रीति-समर्पण', 'प्रतीक्षा', 'अमर्त्य', 'मुक्तिक्षण'।

(6) प्रकृति चित्रण

'शरदागम', 'शरद-चेतना', 'चन्द्रमुखी', 'शरद-श्री', 'जीवन-प्रभात', 'वन-श्री', 'वसन्त'।

इस संग्रह की प्रस्तावना में पंत जी ने अपने उत्तर-जीवन की प्रेरणाओं और विचारधाराओं का विश्लेषण किया है। इसमें उन्होंने उन

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४०

आलोचकों के आक्षेपों का निराकरण भी किया है जो उनकी चेतनाविवादी रचनाओं से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट किया है कि उनकी विचारधारा विकासशील है और उसकी अपनी गतिविधि है। उन्होंने लिखा है- 'ज्योत्स्ना' में मैंने जीवन की जिन बहिरंतर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उसके रूपान्तरित होने की ओर इंगित किया है, 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में उन्हीं के बहिर्मुखी (समतल) संचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) तथा 'स्वर्णकिरण' में अन्तर्मुख (ऊर्ध्व) संचरण को (जो अध्यात्म का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है, किन्तु समन्वय तथा संश्लेषण का दृष्टिकोण एवं तज्जनित मान्यताएँ दोनों में समान रूप से वर्तमान हैं- 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में यदि ऊर्ध्व मानों का समतल धरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में समतल मानों का ऊर्ध्व धरातल पर, तो तत्त्वजः एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं।" 11

'रजतशिखर' :

सन् 1950 ई. से सन् 1954 ईसवी के बीच तक आकाशवाणी की सेवा करते हुए पंत जी ने जो काव्य-रूपक लिखे वे 'रजतशिखर', 'शिल्पी' तथा 'सौवर्ण' नामक तीन संकलनों में संग्रहीत हैं। इन काव्य-रूपकों की संख्या कुल मिलाकर 12 है। कवि का अपना अन्तर्द्वन्द्व ही इन काव्य-रूपकों में प्रतिफलित हुआ है। ये समस्त काव्य-रूपक कविवर पंत के जीवन-दर्शन के प्रतिबिम्ब हैं। इनमें भावी युग और मानव की आदर्श-प्रतिमा के अंकन का सफल प्रयास हुआ है।

पंत जी के काव्य-रूपकों का पहला संकलन 'रजतशिखर' है जो सन् 1952 ईसवी में प्रकाशित हुआ। इसमें उनके 'रजतशिखर', 'फूलों का देश', 'उत्तरशती', 'शुभ्रपुरुष', 'विद्युतवसना' एवं 'शरदचेतना' शीर्षक काव्य-रूपक संकलित हैं।

सन् 1951 ईसवी में लिखित "रजतशिखर" रूपक 'रजशिखर' संकलन का पहला रूपक है। इसमें जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४१

संचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। मानव-मन के विकास की वर्तमान स्थिति में ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।¹²

‘शिल्पी’ :

‘शिल्पी’ नामक काव्य-रूपक-संग्रह भी सन् 1952 ई. में ही प्रकाशित हुआ। ‘शिल्पी’, ‘ध्वंसशेष’ तथा ‘अप्सरा’ शीर्षक तीन काव्य-रूपक इस संग्रह में सम्मिलित हैं, जिनमें वर्तमान विश्व-संघर्ष को वाणी देने के साथ ही नवीन जीवन-निर्माण की दिशा की ओर संकेत किया गया है।

“शिल्पी” नामक रूपक ‘शिल्पी’ संकलन का पहला रूपक है। इसके पहले दृश्य में कलाकार के अन्तःकरण का चित्रांकन किया गया है। इसमें शिल्पी मुख्य पात्र है। वह एक मूर्ति-निर्माण में संलग्न है किन्तु वह अपने कर्म में असफलता प्राप्त करता है क्योंकि कला आस्था मांगती है। जब कलाकार में आस्था उत्पन्न होती है, वह अपनी मूर्ति को सजीव देखने लगता है। शिल्पी आस्थाशील मन से गांधी, पटेल, गौरीशंकर, राधाकृष्ण आदि की मूर्तियों का निर्माण करता है।

दूसरे दृश्य में मार्क्सवादी विचारधारा वालों के द्वारा शिल्पी को पलायनवादी और स्वप्नों का चित्रांकन करने वाला मानकर उसकी भर्त्सना की जाती है किन्तु शिल्पी अपना मत प्रस्तुत करता है तथा कहता है- कला जनवादी है।

अन्त में (चौथे दृश्य में) मार्क्सवादी आश्वस्त हो जाते हैं और अरविन्दवादी कला को ‘जनमत का दर्पण’ स्वीकार किया जाता है।

चार दृश्यों वाले इस रूपक में पंत जी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि तब युग की वस्तु-परिस्थिति बदल जाती है और पूर्वमान्य आदर्श निरर्थक हो जाते हैं, तब कला को अभिनव आदर्शों की सृष्टि करनी होती है, नव-कल्पित को मानव-आत्मा के चिरन्तन सत्य के साथ संयोजित करना होता है।¹³

इस रूपक में मूर्तियों के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी-कविता

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४२

का सम्पूर्ण इतिहास आँखों के सामने मूर्त हो उठता है। पात्र शिल्पी की अंतिम मूर्ति पंत जी की ही अभिनव कविता की मूर्ति है।¹⁴

‘अतिमा’ :

पंत जी के काव्य-संकलन ‘अतिमा’ का प्रकाशन सन् 1955 ई. में हुआ। इसमें सन् 1954 ई. और फरवरी सन् 1955 ई. के बीच रचित 55 कवितायें संग्रहीत हैं। ‘अतिमा’ शब्द का प्रयोग पंत जी ने अतिक्रांति अथवा महिमा के अर्थ में किया है जिसे अंग्रेजी में ट्रांसिडेंस कहते हैं : “वह मनःस्थिति, जो आज के भौतिक, मानसिक, सांस्कृतिक परिवेश का अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।”¹⁵ ‘अतिमा’ को पंत जी ने उस ज्योति-रूप में चित्रित किया है जो अन्धकार को भेदती है और भू-जीवन को विकसित करती है।

विषय की दृष्टि से ‘अतिमा’ की कविताओं को निम्नांकित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) प्रकृति-सम्बन्धी

‘जन्मदिवस’, ‘गिरिप्रान्तर’, ‘पतझर’, ‘कूर्माचल के प्रति’, ‘सोन-जुही’।

(2) सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों पर आधारित ‘कौवे बत्तखें मेंढक’, ‘प्रकाश पतिंगे छिपकलियाँ’, ‘केंचुल’, ‘स्वर्णमृग’ आदि।

(3) विविध विषयों से सम्बन्धित

इसके अन्तर्गत प्रार्थनापरक तथा सिद्धान्त सम्बन्धी रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। ‘नेहरू-युग’, ‘अतिमा’, ‘अभिवादन’, ‘लोकगीत’, ‘विज्ञापन’, ‘मनसिज’, ‘आः धरती कितना देती है’ तथा ‘सन्देश’ इस काव्य-संग्रह की उल्लेखनीय कवितायें हैं। ‘रश्मिचरण धर आओ’, ‘आवाहन’, ‘स्वप्न के पथ’, ‘ध्यानभूमि’, ‘प्रार्थना’ आदि प्रार्थना-परक रचनायें हैं। “शान्ति और क्रान्ति” सिद्धान्त सम्बन्धी रचना है। कुछ कविताओं में गूढ़ मानस-पट को खोला गया है- जैसे ‘नवजागरण’, ‘जिज्ञासा’, ‘बाहर-भीतर’, ‘उषाएँ’ ‘प्राणों की द्वाभा’, ‘अन्तर्मानस’,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४३

‘प्राणों की धरती’, ‘दिव्यकरूणा’ आदि।

‘गीतों के दर्पण’ शीर्षक गीत पन्त जी के आत्मविश्वास को प्रकट करता हुआ यह संकेत करता है कि कवि अब अपने निरीक्षण-परीक्षण तथा अनुभव के आधार पर अपनी मान्यताएँ सुनिश्चित कर चुका है और उसकी दृष्टि अपनी हो चुकी है।

‘सौवर्ण’ :

पन्त जी के काव्य-रूपकों का तीसरा संग्रह ‘सौवर्ण’ सन् 1956 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें उस समय ‘सौवर्ण’ एवं ‘स्वप्न और सत्य’ नामक केवल दो रूपक सम्मिलित थे, किन्तु सन् 1963 में प्रकाशित होने वाले इसके अगले संस्करण में ‘दिग्विजय’ शीर्षक तीसरा रूपक भी सम्मिलित हो गया।

‘वाणी’ :

“वाणी” का प्रकाशन-काल सन् 1957 है। इसमें ‘अतिमा’ के बाद की काव्य-रचनाएँ संग्रहीत हैं। इस संग्रह की रचनाओं का मूल स्वर सामाजिक है। कवि का हृदय-विस्तार यहाँ देखने को मिलता है, साथ ही विश्वमंगल की उत्कट अभिलाषा भी। कटु यथार्थ का बोध करके कवि ने कल्पित तथा कुत्सित भेद हरने के लिए सबको सम्बोधित किया है। ‘अभिषेक’ शीर्षक रचना की ये पंक्तियाँ विश्व के वर्तमान यथार्थ की सटीक व्याख्या करती हैं—

“धर्म, नीति, संस्कृतियों,

खंडहर रूढ़ि रीतियों

जाति-पाँतियों, परम्पराओं के प्रेतों से

आत्मपराजित—

राग-द्वेष, भय-क्लेश, अनास्था से चिक्नुठित

वेमनस्य, वैषम्य, स्वार्थगत मतभेदों की

घृणित भित्तियों में सीमित, शतखंडित,

जो बहु आर्थिक तांत्रिक स्पर्धाओं से पीड़ित,

सैन्यशक्ति, शस्त्रों से सज्जित,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४४

भौतिक मदिरा पी प्रमत्त, अणुमृत, जड़-चेतन”¹⁶

‘वाणी’ की रचनाओं को विषय की दृष्टि से अधोलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

प्रार्थनापरक— ‘प्रार्थना’

युगपुरुषों से सम्बन्धित— ‘बुद्ध के प्रति’, ‘कवीन्द्र के प्रति’

राष्ट्रीय— ‘भारत माता’

प्रकृति सम्बन्धी— ‘फूलों का दर्शन’

असंगत यथार्थ के प्रति आक्रोश सूचक— ‘कौवे’, ‘आत्मदान’, ‘अग्निसंदेश’, ‘अभिषेक’

सांस्कृतिक-जीवन निर्माण हेतु मार्गदर्शक— ‘नवोन्मेष’, ‘वाणी’, ‘सिन्धुपथ’, ‘विकासक्रम’, ‘आवाहन’, ‘रूपान्तर’, ‘जयदेहि’, ‘रूपदेहि’, ‘सनेहस्पर्श’, ‘नवदृष्टि’, ‘अग्नि की पुकार’, ‘जीवन-गीत’, ‘अन्तर्ध्वनि’, ‘विकासक्षेत्र’, ‘अर्थ-सृष्टि’, ‘पुनर्मूल्यांकन’, ‘उन्नयन’।

स्वतंत्र रचनाएँ— ‘घोंघे शंख’, ‘सम्बोध’, ‘कृतज्ञता’

आत्मकेन्द्रित रचना— ‘आत्मिका’

‘वाणी’ की सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे लम्बी कविता ‘आत्मिका’ है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी हुई यह कविता जीवन-दर्शन को अपनाए हुए, अत्यंत स्निग्धता तथा सरलता के साथ प्रकृति के आँचल, पारिवारिक जीवन, युग-यथार्थ तथा व्यक्तिगत जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों के साथ वस्तुगत धरातल पर विचरी है तथा व्यापक जीवन-सत्य की ओर संकेत करती है।

‘कला और बूढ़ा चाँद’ :

सन् 1959 ई. में प्रकाशित इस कृति में 90 काव्य-रचनाएँ संग्रहीत हैं। ये सभी रचनाएँ विविध विषयों से सम्बन्धित हैं और विविध अभिव्यक्ति-भंगिमा के साथ सामने आयी हैं। मूलतः 1947 के बाद प्रकाशित अन्य रचनाओं के समान यह कृति भी योगी अरविन्द के दर्शन से प्रभावित है। इस कृति की प्रथम दो रचनाएँ ‘बूढ़ा चाँद’ तथा ‘कला’ को कवि ने मानवता के व्यापक प्रकाश की वाहिका माना है

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४५

तथा उसमें सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय देखना चाहा है-

‘शिव की कला ही,
सत्य और सुन्दर है।’¹⁷

‘धेनुयें’ शीर्षक रचना में पंत जी ने मानव को सन्देश दिया है-

‘तुम्हारा सत्य तुम्हारे भीतर है।’¹⁸

इस कृति में नवचेतना की कई स्थितियों का चित्रण हुआ है। इसमें पंत जी ने यह भी कहा है कि वे अवचेतन के शिखर से बोल रहे हैं। चेतना के आनन्द-चित्रों की इसमें अतिशयता है। अपने नवीन जीवन-दर्शन के अनुकूल पंत जी ने अंधकार और प्रकाश को एक ही कर दिया है। ‘देव’ शीर्षक कविता में अतिमानव की कल्पना की गयी है। ‘सिंधु-मंथन’ कविता में पंत जी ने नूतन सृष्टि का आवाहन किया है तथा जीर्ण प्राचीन सभ्यता के विनाश की कामना की है। ‘एकाग्रता’, ‘सान्निध्य’, ‘अनुभूति’, ‘जीवनबोध’, ‘अवरोहण’, ‘सूर्यमन’, ‘शंख’, ‘अंतःस्थित’, ‘अनिर्वचनीय’, ‘वरदान’, ‘सदानीर’ आदि इसकी उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

विचार-प्रतिपादन, भावोन्मेष, प्रेरणात्मक स्थिति- इन तीनों दृष्टियों से ‘कला और बूढ़ा चाँद’, ऊर्ध्व मूल्यों का काव्य है। जीवन-दर्शन की दृष्टि से ‘कला और बूढ़ा चाँद’ में ‘ज्योत्स्ना’ का ही नया रूप है। इसमें कवि की विचार-श्रृंखला ऊर्ध्व-चेतना के प्रकाशस्थल तक जाती है। यह काव्य पंत जी के ‘द्रष्टा-रूप’ का द्योतक है।

भाव-पक्ष के साथ ही इसका कलापक्ष सशक्त एवम् समृद्ध है। यह पंत जी का अत्यन्त साहसी काव्य-प्रयोग है तथा इसे सर्वोत्कृष्ट काव्य-कृति मानते हुए भारत सरकार ने पंत जी को पाँच हजार रूपयों का पुरस्कार भी दिया था।

‘साठ वर्ष : एक रेखांकन’ :

सन् 1960 में प्रकाशित इस आत्मसंस्मरणात्मक गद्य-कृति में पंत जी ने अपनी जीवन-कथा को पूर्णतया निष्पक्ष होकर मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के जो संस्पर्श दिये हैं

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४६

उनसे पंत जी, उनके स्वभाव, उनके व्यक्तित्व, उनकी समसामयिक परिस्थितियों तथा उनकी कविताओं को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

पंत जी की यह आत्मजीवनी न केवल उनके मानसिक तथा साहित्यिक विकास को अभिव्यक्ति देती है वरन् जीवनी-लेखन के क्षेत्र में सर्वथा एक नये मापदण्ड को स्थापित करती है।

‘शिल्प और दर्शन’ :

सन् 1961 में प्रकाशित इस निबन्ध-संग्रह के पहले परिच्छेद में पंत जी के कतिपय काव्य-संचयनों की प्रस्तावनाएँ- ‘प्रवेश’, ‘पर्यालोचन’, ‘प्रस्तावना’, ‘परिदर्शन’, ‘चरणचिन्ह’, ‘दृष्टिपात’ तथा दूसरे परिच्छेद में आकाशवाणी से प्रसारित उनकी वार्ताएँ, अभिभाषण तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ निबन्ध संग्रहीत हैं। ‘मैं और मेरी कला’, ‘कला का प्रयोजन’, ‘यदि मैं कामायनी लिखता’, ‘जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण’, ‘भाषा और संस्कृति’, ‘कला और संस्कृति’, ‘मेरी कविता का पिछला दृशक’, ‘मेरी साहित्यिक मान्यताएँ’, ‘प्रयोगशील काव्य’, ‘साहित्यकार की आस्था’, ‘हिन्दी का भावी रूप’, ‘मेरी मनोकामना का भारत’, ‘सन्तुलन का प्रश्न’ तथा ‘दार्शनिक अरविन्द की साहित्यिक देन’ आदि इसके दूसरे परिच्छेद की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं जिनसे हमें ज्ञात होता है कि पंत जी समसामयिक प्रवृत्तियों के प्रति पूर्ण प्रबुद्ध थे तथा उनके साम्यन्ध में उन्होंने सम्यक् दिशा-निर्देश भी किया। वे कट्टर आस्थाएँ लेकर नहीं चले, अपितु उन्होंने सदैव समयानुकूल सिद्धान्तों को ही ग्रहण किया; साथ-ही-साथ अपने स्वतंत्र विचार भी व्यक्त किये और जहाँ कहीं मतभेद रहा, वह भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया।

‘लोकायतन’ :

‘लोकायतन’ पंत-काव्य-परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस महाकाव्य के महत् कलेवर में कवि का समस्त जीवन-दर्शन समाहित है। इस महाकाव्य का रचनाकाल सन् 1959 ई. से सन् 1963 ई. तक है। किन्तु यह प्रकाशित सन् 1965 में हुआ। 452 पृष्ठों के इस

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४७

महाकार काव्य-कलेवर में अन्तर्बाह्य का संतुलित उन्नयन, योगिराज अरविन्द का अतिमानस-दर्शन, भारत की युगीनस्थिति, समकालीन संघर्ष, संकुल जीवन, समस्त आपाधापी, गांधीवाद का जागरण-स्वर तथा जीवन के शाश्वत मूल्यों का अवतरण एवं विश्व की आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रगति को संयोजित करने का सफल प्रयास किया गया है।

‘लोकायतन’ में चित्रित विचार-संरणि अपने आप में नवीन नहीं है। ‘पल्लव’ काल से ही जहाँ-तहाँ इस प्रकार के विचारों का प्रदिर्भाव कवि-काव्य में होने लगा था। इसके बाद ‘लोकायतन’ तक की रचनाओं में जो विचारधाराएँ और मान्यताएँ अभिव्यक्त हुई हैं, वे सब संयोजित रूप में ‘लोकायतन’ में समाविष्ट हैं। अतः ‘लोकायतन’ की सबसे बड़ी विशिष्टता यही है कि इस काव्य-कृति में हम कवि की जीवन-साधना की समस्त अनुभूतियों और काव्य-साधना की विविध अभिव्यक्तियों को एक साथ संयोजित रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

‘छायावाद : पुनर्मूल्यांकन’ :

सन् 1965 में प्रकाशित ‘छायावाद : पुनर्मूल्यांकन’ आलोचना के क्षेत्र में पन्त जी की अत्यन्त मौलिक तथा स्वतंत्र कृति है। इसमें प्रयाग विश्वविद्यालय के द्वारा आयोजित ‘निराला-व्याख्यान-माला’ में पढ़े गये इन तीन दीर्घ निबन्धों का संग्रह है- (1) ‘उद्भव और परिवेश’, (2) ‘विकास और कवि चतुष्टय’ (3) ‘कलाबोध, विधाएँ और पुनर्मूल्यांकन’। इन निबन्धों द्वारा उन्होंने छायावाद के विषय में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए मूल्यपरक दृष्टि से उन पर पुनर्विचार करने का स्तुत्य प्रयास किया है। पन्त जी की धारणाएँ यद्यपि स्फुट रूप से उनकी पुस्तकों की भूमिकाओं में व्यक्त होती रही थीं तथापि यहाँ उनका समग्र समायोजन करके उन्होंने एक नयी अन्तर्दृष्टि प्रस्तुत की है।

‘कला और संस्कृति’ :

सन् 1965 में ही ‘कला और संस्कृति’ का प्रकाशन हुआ। इसके बारे में पन्त जी का वक्तव्य है- ‘कला और संस्कृति’ के अन्तर्गत

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४८

मेरे इधर के कुछ वार्ता-निबन्ध संकलित हैं। ‘शिल्प और दर्शन’ (मई 1961) के बाद मेरी गद्य-रचनाओं का यह दूसरा संग्रह है, जिसमें युग-संघर्ष से सम्बन्ध रखने वाले मेरे अनेक निबन्ध वर्तमान संक्रांतिकालीन जीवन-समस्याओं पर मेरे दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया को प्रतिफलित करते हैं।¹¹⁹

बहिरंग विवेचन तथा आत्मालोचन के साथ ही पन्त जी ने अपने पूर्ववर्ती तथा समसामयिक अन्य कवियों तथा युगचिन्तकों की उपलब्धियों का मूल्यांकन भी किया है। “मैंने कविता लिखना कैसे प्रारम्भ किया”, ‘प्रकृति में मेरा बचपन’, ‘मेरी लेखन-प्रक्रिया’ ‘मन के साथी जोशी जी’, ‘काव्य-पुरुष गुप्त जी’, ‘प्रसाद जी के संस्मरण’, ‘योगिराज अरविन्द’, ‘ऊर्ध्व चेतना’, ‘दिव्य दृष्टि’, ‘मान्यताएँ बदल रही हैं’, ‘साहित्य की एकसूत्रता’, ‘राष्ट्रीय जागरण और साहित्यकार’, ‘वर्तमान संकट-स्थिति और साहित्यकार’ आदि समीक्षात्मक निबन्ध इसी सन्दर्भ में अवलोकनीय हैं।

‘किरण-वीणा’ :

पन्त जी की यह काव्य-कृति सन् 1967 में प्रकाशित हुई। इसको पढ़ने से स्पष्ट होता है कि पन्त जी ने इसमें व्यक्ति चेतना से विश्वचेतना की ओर, व्यक्ति-मानव से विश्वमानव की परिकल्पना की ओर बढ़ते हुए अध्यात्म और विज्ञान के बीच एक स्थायी पुल बनाने की दिशा में संवेदना के स्तर पर स्पृहणीय प्रयास किया है। कहीं-कहीं उन्होंने अतीत के केंचुल में नव जीवन डालने के स्थान पर नवमानव का निर्माण करने का सुझाव दिया है तो कहीं स्पष्टतः कहा है-

“देव मनुज पशु
नया मनुज बन
जीयेंगे जब
तब होगा
चरितार्थ
धरा पर जीवन

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/४९

ईश्वर है।' 20

‘किरण-वीणा’ में 77 कविताएँ हैं।

‘पौ फटने से पहले’ :

यह काव्य-कृति भी सन् 1967 ई. में ही प्रकाशित हुई। इसमें पुस्तक के नाम के अनुरूप ही आज के हासो-मुख भावनात्मक संघर्ष का गहन अंधकार तथा कल की चिन्मय संवेदना का आशारूप-प्रकाश चित्रित हुआ है। साथ ही रागचेतना के सामाजिक विकास की रूपरेखा भी इसमें संग्रहित है। इसकी अधिकांश कवितायें मूलतः जीवन की केन्द्रीय चेतना को सम्बोधित हैं और पन्त जी की भावदृष्टि को समझने में इनसे पर्याप्त सहायता मिलती है।

‘पतझर : एक भावक्रान्ति’ :

यह काव्य-कृति सन् 1969 में प्रकाशित हुई। इसमें 109 कवितायें संकलित हैं। इस संग्रह की भूमिका में पन्त जी ने लिखा है- प्रस्तुत संग्रह में मेरी अनेक प्रकार की नवीनतम रचनायें संग्रहीत हैं। अधिकतर रचनायें भाव-प्रधान तथा युगबोध से प्रेरित हैं, कुछ विचार-प्रधान भी हैं।..... संग्रह का नाम ‘पतझर : एक भाव क्रान्ति’ है। आज की विषमताओं तथा जाति-वर्गगत विभेदों का उन्मूलन करने के लिए मनुष्य को रोटी के संघर्ष के अतिरिक्त जनमन में घर किये विगत युगों के मूल्यों से भी लड़ना है..... मेरे विचार यदि तरुण भावनाओं को अस्थिराँ प्रदान कर सकेंगे तो मुझे प्रसन्नता होगी।' 21

इससे स्पष्ट है कि पन्त जी ने भावक्रान्ति को आभ्यांतर क्रान्ति का पर्याय माना है, जिसे वे बाह्य या भौतिक क्रान्ति की समग्रता तथा परिपूर्णता के लिए अनिवार्य मानते थे।

‘गीतहंस’ :

पन्त जी के इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन काल भी सन् 1969 ही है। इसमें 95 कवितायें संग्रहीत हैं। कवि ने इन गीतों के अन्दर हृदय-मूल्यों को अधिक महत्व दिया है। नैतिक और भौतिक मूल्यों का समन्वय करते हुए जनमन को जीवन-सृजन के प्रेम की ओर उन्मुख

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५०

किया है। युगीन यथार्थ और आदर्श के बीच चलते हुए अविराम संघर्ष को अनिवार्य मानते हुए कवि ने मानवता को अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और गम्भीर दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया है। इसमें सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् के युगदर्शन तथा युग-यथार्थ की ओर कवि का विशेष रुझान दृष्टिगत होता है। इसमें उन्होंने अतीत की नारी के साथ-साथ भविष्य की नारी का भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

इस संग्रह की अनेक रचनाओं में पन्त जी ने पर्वतीय सुषमा का सुन्दर चित्रण किया है जो प्रारम्भ से ही उनका प्रिय वर्ण्य-विषय रहा है। इसमें उन्होंने धरती के प्रति अपने विशेष प्रेम को व्यक्त किया है तथा उससे अपने अटूट सम्बन्ध को दर्शाया है।

‘शंखध्वनि’ :

यह काव्य-कृति सन् 1971 ई. में प्रकाशित हुई। इसमें 97 रचनाएँ संग्रहीत हैं। इस संग्रह की रचनाओं में पन्त जी ने मुख्यतः नव-जागरण के स्वरोँ तथा विश्व-जीवन के भीतर उदय हो रहे मनुष्यत्व की रूपरेखाओं को अभिव्यक्त किया है। कुछ रचनाओं में उन्होंने वर्तमान युग-जीवन की विसंगतियों के प्रति अपने मन की प्रतिक्रियाओं तथा कुछ व्यक्तिगत सुख-दुःख की अनुगूँजों को वाणी दी है। इस दृष्टि से ‘सृष्टितत्व’, ‘अन्तर्यात्रा’, ‘आत्मपरिचय’, ‘आत्मधुरी’, ‘आत्मदेह’, ‘देवोत्थान’, ‘आत्मदर्प’ तथा ‘1971’ आदि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं।

‘शशि की तरी’ :

इस कृति का प्रकाशनकाल 1972 है। इस काव्य-संग्रह में ‘अनुपमा’ से सम्बन्धित 51 स्मृति-गीत संकलित हैं। अनुपमा का परिचय देते हुए पन्त जी ने लिखा है- “अनुपमा एक तीन-चार साल की भोली लड़की थी जिसे मैंने स्वराज-भवन, इलाहाबाद के बाल-भवन में देखा था।..... अनुपमा में न जाने ऐसे कौन से विशिष्ट एवं उच्च संस्कार थे जिसे देखते ही मेरा हृदय उसके प्रति गहरे वात्सल्य भाव से भर गया और दिन-पर-दिन उसके प्रति मेरे मन का आकर्षण बढ़ता ही

सुमित्रानन्दन पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५१

गया। उसके घुटने की हड्डी कुछ बढ़ी हुई थी और बार-बार घुटने की टोपी से रगड़ खाने के कारण उसमें प्रायः सूजन हो जाया करती थी। दुर्भाग्यवश घुटने का सफल आपरेशन होने के बाद एनिस्थीजिया के प्रभाव से न उबर सकने के कारण फिर उसकी स्मृति कभी नहीं लौट सकी। तीन-चार दिन के भीतर ही उसकी दशा और भी बिगड़ती चली गयी। चौथे दिन रात्रि के बारह बजे मुझे अस्पताल से फोन द्वारा सूचना मिली कि वह स्वर्ग की कली अपनी देहलीला समाप्तकर चली गयी है।²² उसकी स्मृति ने सदैव के लिए पंत जी के अन्तस् में अपना स्थान बना लिया। प्रकृति के अंक में, हृदय के स्पन्दन में अनुपमा साकार हो उठी। सृष्टि के कण-कण में वही उन्हें दिखाई देने लगी। पंत जी की कला दुःख-दग्ध होकर सृजनवती हो गयी और उन्होंने 'ग्रंथि' के स्तर के, यद्यपि भिन्न वृत्ति के, स्नेह-गीतों का प्रणयन किया-

“तुम मेरी सौन्दर्य-बोध की
सूक्ष्म सुरभि ही पावन।”²³

‘समाधिता’ :

सन् 1973 ई. में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह में 101 रचनाएँ हैं। इसमें भी पंत जी ने भू-जीवन के प्रति अपनी गम्भीर निष्ठा को वाणी दी है। उनके विचारानुसार यह धरती ही ईश्वर का आँगन है-

“भेद नहीं जग
में ईश्वर में
प्रश्रा हो जो
विकसित-
भू-पथ पर
ईश्वर प्रतिक्षण
विचरण करना
निश्चित।”²⁴

पंत जी के विचार सदा ही भविष्योन्मुख रहे हैं। अपनी इस

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५२

कृति में भी उन्होंने अतीत को भुलाकर भविष्य की ओर आशान्वित रहने की शिक्षा इन पंक्तियों में दी है-

“मत अतीत शव को ढो हे,
देखो भविष्य का आनन।”²⁵

स्त्री जाति के प्रति उनके श्रद्धायुक्त विचार यहाँ भी कई कविताओं में दृष्टव्य हैं।

इस संकलन की अंतिम रचना ‘जय बाँड्ला’ है जिसमें पंत जी ने बाँड्ला देश में हुए अत्याचार, अनाचार तथा बलात्कार का यथार्थ अंकन करने के बाद कामना की है कि-

नव मानवीय सामाजिकता में
संयोजित हो,
धरा स्वर्ग रचना रत
मनुज प्रीति में डूबी
निखिल विश्व तक विस्तृत हो
उसका मन क्षितिज,
जीवन ईश्वर के प्रति
पूर्ण समर्पित हो मना।”²⁶

‘आस्था’ :

सन् 1973 में ही ‘आस्था’ का भी प्रकाशन हुआ जिसमें कुल 108 रचनाएँ हैं। ‘आस्था’ की कविताएँ मनुष्य की धरती से सम्बन्धित हैं। आज का युग सभ्यता के विकास के साथ-साथ सांस्कृतिक विघटन का युग है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आज का व्यक्ति बाहरी मूल्यों को महत्व देने लगा है तथा आन्तरिक गुणों की अवहेलना करने लगा है। इसीलिए पंत जी ने आह्वान किया है-

“आत्मज्ञान के ओ दाताओं! सम्मुख आओ,
मानव को मानव बनने की शक्ति, सिद्धि दो।”²⁷

नारी के प्रति अपने उच्च विचारों को पंत जी ने यहाँ भी कुछ रचनाओं में व्यक्त किया है।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५३

‘साठ वर्ष और अन्य निबंध’ :

सन् 1973 ई. में प्रकाशित इस निबंध-संकलन में कवि श्री सुमित्रानंदन पंत के आत्मकथात्मक तथा उनकी साहित्य-सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रकाश डालने वाले निबंध सम्मिलित हैं। सारे निबंधों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- (1) वे निबंध जिनमें पंत जी ने अपनी जीवन-कथा को शब्दबद्ध किया है, (2) उन विभूतियों तथा ग्रंथों का चित्रण तथा विवेचन करने वाले निबंध जिन्होंने पंत जी के जीवन और विचार-जगत् को प्रभावित किया है, और (3) समसामयिक साहित्यिक समस्याओं और प्रश्नों पर पंत जी का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले निबंध।

पंत जी के ही शब्दों में, “प्रस्तुत संकलन में ‘साठ वर्ष : एक रेखांकन’ के साथ अन्य निबंध जोड़ दिये गये हैं, जिनमें अधिकांशतः मेरे साहित्यिक जीवन तथा साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं पर ही प्रकाश डालते हैं। चार निबंध जिनके शीर्षक हैं- (1) धर्म और विज्ञान, (2) मान्यताएँ बदल रही हैं, (3) आधुनिक युग में महाकाव्य की उपयोगिता तथा (4) उस पार न जाने क्या होगा पहले मेरे निबंध संकलन ‘कला और संस्कृति’ में प्रकाशित हो चुके हैं, उन्हें भी प्रस्तुत पुस्तक में विषयों की समानता के कारण सम्मिलित कर लिया गया है।”²⁸

मुकुलित सुमनों की सुन्दरता और आकर्षण को जिस प्रकार एक माला में गूँथकर सँजोया जाता है, उसी प्रकार पंत जी ने अपने भाव जगत और विचार जगत के सौन्दर्य को निबंधों की माला में गूँथा है। पंत जी के काव्य, कवि-जीवन का मर्म तथा उनके वैचारिक व्यक्तित्व को समझने के लिए यह निबंध-संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। **‘सत्यकाम’ :**

“सत्यकाम” पंत जी का दूसरा महत्वपूर्ण प्रबन्धकाव्य है जो सन् 1975 में प्रकाशित हुआ। ग्यारह सगों में विभक्त 238 पृष्ठों का यह महाकाव्य माँ सरस्वती को समर्पित किया गया है। सन् 1942 ई. के बाद पंत जी ने मनो जगत् के सूक्ष्म क्षितिजों की ओर भाव-रूपी

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५४

पंखों को खोलकर मुक्त भाव से जो विचरण किया, उसकी उपलब्धियों की निस्सीम ऊँचाई तथा फलश्रुति इस प्रबन्धकाव्य के कलेवर में बाँधकर उपस्थित हुई है। पंत जी के विचारानुसार अध्यात्म की परिणति भरती के जीवन की सम्पन्नता एवं परिपूर्णता में ही होनी चाहिये। भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन की समेकित गति से ही मानव-जीवन की वास्तविक प्रगति हो सकती है- अपने इस विश्वास को पंत जी ने इस काव्य में भी दोहराया है।

पंत जी के शब्दों में- “सत्यकाम” में साधना का सत्य तथा काव्य का सत्य तुदाकार हो गये हैं। कथा-भाग का कृश-पंजर मुख्यतः छान्दोग्य उपनिषद् से लिया गया है, जिसके अनुसार सत्यकाम नामक पात्र निर्जन वन में वृक्ष, अग्नि, हंस तथा मद्गु-चार देवों से भी दीक्षा लेता है। शेष कल्पना तथा अनुभूति-प्रसूत हैं। मूलतः यह एक तापस की भावनाओं को वाणी देने वाला बोध काव्य है।”²⁹

‘गीत-अगीत’ :

इस काव्य-संकलन का प्रकाशन सन् 1977 ई. है। इस संग्रह में कुल इक्यानवें रचनायें हैं जो आज के संक्रान्ति-युग की परिस्थितियों से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं और इनके भाव-बोध में युग की विषमताओं को अभिव्यक्ति मिली है। ये रचनायें प्रमाणित करती हैं कि पंत जी के अन्तर्मन में भी कविता लिखने की प्रेरणा देती रहती थी। अपनी उम्र के छिहत्तरवें वर्ष में भी प्रसन्न मन से व्यापक जन-जीवन से सम्बन्धित कवितायें लिखते रहे। वयोवृद्ध के बावजूद उनका मन तथा मस्तिष्क दुरुस्त रहा और वह पहले की सी पूर्ण क्षमता के साथ विभिन्न विषयों पर इतने व्यापक रूप से दृष्टिपात कर सके हैं। उसे देखकर आश्चर्य होता है। इसमें धर्म, ईश्वर, प्रकृति, नारी, दहेज प्रथा, मध्यम वर्ग का चित्रण, नव-मानवता, महापुरुषों की स्तुति आदि विभिन्न विषयों पर उन्होंने व्यापक दृष्टिपात किया है।

‘संक्रान्ति’ :

इसका भी प्रथम प्रकाशन-काल सन् 1977 है। इस संग्रह में

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५५

कुल बावन रचनायें हैं। इन्हें लिखने की प्रेरणा उन्हें सन् 1977 ई. के चुनाव से मिली थी। जिससे उन्हें स्पष्ट आभास हो गया था कि ग्रामीण मनोनुकूल राजनीतिक निर्णय ले सकते हैं। गाँवों के इस जागरण से पंत जी इतना अधिक प्रभावित हुए कि 'ग्राम्या' के बाद इस संग्रह में उनका ध्यान फिर से गाँवों की ओर गया तथा उन्हें लगा कि गाँव निस्सन्देह ही भारत जैसे विराट् देश के अभिन्न अंग हैं जहाँ भारतीय संस्कृति की धरोहर अभी भी अक्षुण्ण है। इस कृति की प्रायः सभी कवितायें देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं और सभी में प्रकारान्तर से भारत की विश्व में श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है।

'नये संकट' :

'नये संकट' पंत जी की दिसम्बर 1977 में लिखी हुई अन्तिम और अपूर्ण रचना है जिसमें केवल नौ कवितायें ही संकलित हैं। विविध वर्ण्य-विषयों पर आधारित इन कविताओं में भी उनकी बहुवर्णित धारणाओं का नयी-नयी भौंगिमाओं में व्याख्यान हुआ है।

: सामूहिक संकलन :

समय-समय पर पंत जी के विभिन्न नामों से कुछ ऐसे संकलन भी प्रकाशित हुए जिनमें उनकी अनेक कृतियों से चुनकर रचनाएँ संकलित की गईं। उनमें से अधिकांश ऐसे संकलन हैं जिनमें रचनाओं का चयन पंत जी ने स्वयं किया है। पंत जी की रचना-यात्रा का वास्तविक परिचय इनसे सीमित रूप में ही प्राप्त हो सकता है। क्रमागत रूप में उन रचनाओं का विवरण पहले दिया जा चुका है जिनसे इन संकलनों की रचनायें ली गयी हैं।

- पल्लविनी
- आधुनिक कवि (भाग दो)
- कवि-श्री
- रश्मिबंध
- चिदम्बरा

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५६

- बच्चन : सुमित्रानन्दन पंत
- हरी बांसुरी सुनहरी टेर
- स्वर्णिम रथचक्र
- चित्रांगदा
- गन्धवीथी
- अभिवेकिता
- मुक्ताभ

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विषय-वस्तु की दृष्टि से पंत जी काव्य अत्यन्त व्यापक है। मानव तथा प्रकृति सम्बन्धी सभी कुछ पंत जी के दृष्टिपथ में घूमता था। मानवतावाद ने जहाँ उन्हें जीवन की विषमताओं को देखने और समझने के लिए प्रेरित किया, वहीं समन्वययुक्त जीवन की परिकल्पना ने विभिन्न दर्शनों के औचित्य-विचार के फलस्वरूप सार-संचयन द्वारा, उन्हें दिशा-बोध दिया। इस प्रक्रिया में जीवन की कुरूपताओं का व्यापक एवं सूक्ष्म अवलोकन तो हुआ ही, पर उसके फलस्वरूप जीवन की मूलभूत महत्ता, उसका सौन्दर्य तथा उसके शिवत्व का बोध भी उजागर हुआ।

'पंत जी का आत्म-मूल्यांकन' :

अपने साहित्यिक संदाय के संबंध में पंत जी का निम्नांकित आत्मकथन उनकी साहित्य-साधना के मूल्यांकन की दृष्टि से अतिशय महत्वपूर्ण है- "अपने युग की महत् चेतना से एक साहित्यजीवी के रूप में, मैं भी अपने ढंग से अनुप्राणित और प्रभावित हुआ हूँ। इसके तार-चढ़ाव में मेरी भी छोटी-सी देन है। अपने पूर्ववर्ती सभी महान् कवियों के ऐश्वर्य को मैंने शिरोधार्य किया है तथा अपने समकक्षियों तथा सहयोगियों की प्रतिभा का भी मैं प्रशंसक तथा समर्थक रहा हूँ। अपनी काव्य-साधना में मैंने संत कवियों तथा रवीन्द्रनाथ से अनुप्राणित आत्मावाद की मध्ययुगीन आध्यात्मिकता तथा आदर्शवाद को अन्तश्चेतना तथा नवीन लोक-चेतना का स्वरूप देने का यत्न उसकी निष्क्रियता को सक्रियता प्रदान करने की, उसकी वैयक्तिकता को लौकिकता में परिणत

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५७

करने की चेष्टा की है। मैंने आदर्शवाद तथा वस्तुवाद के विरोधों को नवीन मानवचेतना के समन्वय में ढालने का प्रयास किया है। मैं अपने युग की चेतना में छाये हुए अन्धविश्वासों तथा निरर्थक रूढ़ि-रीतियों के प्रेतों से लड़ा हूँ। मैंने विभिन्न धर्मों-संस्कृतियों तथा जातियों-वर्गों में बँटे हुए लोगों को अपनी काव्य-चेतना के प्रांगण में आमंत्रित कर उनको एक दूसरे के पास लाने का प्रयत्न किया है। भौतिकता तथा आध्यात्मिकता को एक ही सत्य के दो पहलूओं के रूप में ग्रहण कर उन्हें लोक-कल्याण के लिए महत्तर सांस्कृतिक समन्वय में, एक-दूसरे के पूरक की तरह, संयोजित करना चाहा है। अपने प्रगीतों में मैंने मनुष्य के लिए नवीन सांस्कृतिक हृदय को जन्म देने की आवश्यकता बतलाई है। उसे नवीन रागात्मक संवेदनाओं, नवीन आदर्शों के स्पन्दन से अनुप्राणित करने का प्रयास किया है। कलापक्ष में मैंने अपनी युग-चेतना को नवीन सौन्दर्य का परिधान देने का प्रयत्न किया है, जिसमें मुझे केवल आत्मश्लाघा प्रतीत हो रही है। भविष्य में यदि कभी अपने मन की पुण्य इच्छाओं तथा स्वप्न-सम्भावनाओं को सापेक्षतः परिपूर्ण काव्य-कृति का रूप दे सका तो अपनी साहित्य-साधना को मैं सफल समझूँगा।³⁰

इतनी अधिक रचनायें लिखकर भी पंत जी अपने कवि-कर्म से पूर्णतः संतुष्ट नहीं थे। उनको लगता था कि मेरी सबसे प्रिय रचना तो अभी तक लिखी ही नहीं जा सकी।³¹ पंत जी के ही शब्दों में—
“अपनी इस उक्ति को चरितार्थ करने का मैं सम्भवतः भविष्य में प्रयत्न कर सकूँ।.....मैंने अपना लेखक का जीवन सर्वप्रथम एक उपन्यास लिखकर प्रारम्भ किया था और अन्त में भी मैं एक वृहद उपन्यास के रूप में ही अपने सृजनकर्म का समापन करने के उपरान्त अपना शेष जीवन सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य को समर्पित करना चाहता हूँ।”³² तथा मैं जो नहीं लिख सका उसके लिए अभी तैयारी कर रहा हूँ।..... मैं अपनी दुर्बलताओं तथा त्रुटियों से परिचित हूँ, साथ ही परिचित हूँ अपने युग की कमियों, कुण्ठाओं तथा भ्रान्तियों से।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५८

.....आज के युग की कुरूपता के कर्दम से अवश्य ही विश्व-जीवन को सौन्दर्य का पूर्ण सन्तुलित पद्म प्रस्फुटित होगा, अपने इस सम्बोध को, इस आशा और विश्वास के छुटपुट गीत मैंने अपने नवीन चेतना-काव्य में गाये हैं और सम्भव हुआ तो अभी जो नहीं लिख सका, आगे चलकर अपनी नवीन काव्य-कृतियों में उस चिर-अपेक्षित लोक-जीवन एवं मानव-जीवन का आख्यान भी गा सकूँगा जो इस महान युग के भीषण गुदोंगुबार के भीतर निश्चित, निःसंग तथा प्रशान्त भाव से जन्म ले रहा है।.....मेरी समस्त रचनायें केवल मेरे विकास की पद-चिन्ह भर हैं। उनमें मेरी कवि-दृष्टि का वैचित्र्य भले ही मिलता हो पर मेरे काव्य-व्यक्तित्व की समग्रता उनमें खोजना, उन रचनाओं के साथ ही, मेरे विकासप्रिय व्यक्तित्व के प्रति भी अन्याय करना है।³³ अन्यत्र उन्होंने लिखा है—

“अज्ञेय, अपरिमेय अक्षमताओं का नाम ही मनुष्य का व्यक्तित्व है। भीतरी अयोग्यता के अतिरिक्त बाहरी परिस्थितियों की बाधाओं के तुल्य पर्वत मेरे मनःसंस्कार, कवि-कर्म-प्रेरण, आत्म-प्रस्फुटन या विकास के पथ में रहे हैं। आनुषंगिक विचारणा तथा विकासात्मक अध्ययन की दिशा में कविवर पंत के ये आत्मसाक्ष्य उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रामाणिक पद-चिन्ह प्रकट करते हैं तथा कृति को गौरव प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ

1. आकाशवाणी वार्ता, स्वर्णित रथचक्र के अन्तर्गत 'वीणा' पर
2. वीणा-विवापन-सुमित्रानंदन पंत, पृ० 1
3. वीणा-ग्रन्थि-सुमित्रानंदन पंत, पृ० 92
4. वीर, पृ० 124
5. वही, पृ० 125
6. सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड क - मैं और मेरी रचना 'गुंजन' पृ० 255

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/५९

7. ज्योत्स्ना-सुमित्रानंदन पंत, पृ० 52
8. साठ वर्ष - एक रेखांकन, सुमित्रानंदन पंत, पृ० 48
9. रूपाभ पत्रिका का सम्पादकीय - अंक एक, जुलाई 1938
10. युगवाणी-नवदृष्टि-सुमित्रानंदन पंत, पृ० 18
11. उत्तरा-प्रस्तावना-सुमित्रानंदन पंत, पृ० 9
12. रजतशिखर-विज्ञापन-सुमित्रानंदन पंत, ग्रंथावली, पृ० 80
13. शिल्पी-शिल्पी-सुमित्रानंदन पंत, ग्रंथावली, पृ० 193
14. वही, पृ० 200
15. वाणी-अभिषेक-सुमित्रानंदन पंत, ग्रंथावली खण्ड-4, पृ० 161
16. कला और बूढ़ा चौद, सुमित्रानंदन पंत, पृ० 18
17. कला और संस्कृति-विज्ञापन- सुमित्रानंदन पंत, प्रथम संस्करण-1965
18. किरण वीणा-विज्ञापन-सुमित्रानंदन पंत, पृ० 11
19. सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड-7, पंत, प्रथम संस्करण 1969
20. वही, पृ० 89
21. वही, पृ० 96
22. पंत ग्रंथावली, खण्ड 7, पृ० 139
23. वही, पृ० 193
24. वही, पृ० 212
25. वही, पृ० 224
26. साठ वर्ष और अन्य निबन्ध-विज्ञापन-पंत, प्रथम संस्करण 1973
27. सत्यकाम-विज्ञापित-पंत-प्रथम संस्करण 1975
28. मुक्ताभ-भूमिका-पंत, पृ० 5
29. वही, पृ० 10-11
30. पंत ग्रंथावली, खण्ड 6, पृ० 195
31. साठ वर्ष और अन्य निबंध, पृ० 52
32. पंत ग्रंथावली-खण्ड 6, पृ० 359

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/६०

तृतीय अध्याय

पंत के काव्य में मानवतावाद : मानवतावाद की अवधारणा, विवेचना एवं वर्गीकरण

हिंदी भारतीय साहित्य में सदा से मानव-मूल्यों को महत्ता दी गई है। हिंदी साहित्य में भी यह परम्परा निर्बाध गति से चलती रही है। शाश्वत जीवन-मूल्य तो प्रत्येक सृष्टि-दृष्टि में अपने वास्तविक रूप में विद्यमान रहते हैं लेकिन परिस्थिति के वशीभूत होकर परिवर्तित होने वाले सामयिक अथवा विकास सापेक्ष मूल्य अलग-अलग हो जाते हैं। किसी रचनाकार की कृति में सामाजिक जीवन-मूल्यों की झांकी अधिक सशक्त होती है जबकि अन्य में आर्थिक, वैयक्तिक, राजनीतिक अथवा मानवतावादी जीवन-मूल्यों का अधिक दृढ़ता के साथ प्रस्तुतीकरण होता है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति के ये मूल्य समाज, मोहल्ले, देश, राष्ट्र और विश्व के मूल्यों से टकराते हैं और इस प्रकार मूल्यों का द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। इन मूल्यों के संघर्ष में व्यक्ति बनता भी है और बिगड़ता भी है। इन विविध मूल्यों के परस्पर संघर्ष के अंत में केवल एक ही मूल्य शेष रहता है और वह है मानवीय मूल्य। मानवीय मूल्य ही सबसे सार्थक और सारवान मूल्य होते हैं।

एक विद्वान आलोचक के शब्दों में यद्यपि मानवतावाद को भी विशेषणों से परिभाषित किया गया है यथा- वैज्ञानिक, क्रान्तिकारी आदि मानवीय मूल्य ही अन्ततः साहित्य में विवेक के बढ़ने की दिशा में सहायक हो सकते हैं। साहित्य के क्षेत्र में सर्वाधिक सारवान मूल्य मानवीय मूल्य होते हैं। इसी कारण सुमित्रानंदन पंत ने भी मानवीय मूल्यों के विविध रंगों को अपने रचना-पत्रों में अत्यन्त सूक्ष्मता एवं

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/६१

कुशलता के साथ उकेरा है। ये मानवीय मूल्य उनकी मानवतावादी चेतना को स्पष्ट परिभाषित करते हैं।

मानवतावाद को समझने के लिये मानव मूल्य पर संक्षेप में विचार करना होगा। जो सद् प्रवृत्ति मनुष्य के मन में प्राणि-मात्र के प्रति सहयोग, सहानुभूति, स्नेह, करुणा, सौहार्द, दया, वेदना आदि भावों को विकसित करती है, यही सद् प्रवृत्ति मानव-मूल्यों का मूल मानी जाती है। आधुनिक काल में इसे मानवतावाद के नाम से पुकारा जाता है। ऐसे आदर्श सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था को, जो मानवतावादी सिद्धान्तों एवं व्यवहारों पर अवलम्बित होती है, अन्य वादों के परिप्रेक्ष्य में मानवतावाद कहा जा सकता है। मानवीयता एक प्रवृत्ति के रूप में भारतीय जन-मानस में प्रारम्भिक काल से ही रची बसी है लेकिन इस प्रवृत्ति को वाद के रूप में विकसित करने का श्रेय पाश्चात्य चिन्तकों व दार्शनिकों को है। नीति-शास्त्रीय व्याख्या के अनुसार- “मानवतावादी व्यक्ति के आदर्शों का वह सुचिन्तित एवं सुव्यवस्थित अध्ययन है जिसमें इस भाव को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न होता है कि मानवीयता स्वयं में एक पूर्ण प्रवृत्ति है।”¹ मानवतावाद समस्त मानव-समुदाय के सर्वोपरि मानव-मूल्य है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन मानव जीवन को संयोग, भाग्य और चरित्र के ताने-बाने से बुना रहस्यमय कपड़ा मानते हैं। ‘मूल्य’ शब्द अंग्रेजी के ‘वैल्यू’ शब्द का अनुवाद है। मूल्य शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र में मुद्रा के रूप में धन के अर्थ में किया जा रहा है। ‘मूल्य’ जिसका एक अर्थ है वह गुण या तत्व जिसके आधार पर किसी का महत्व या मान होता है। मानव जीवन-मूल्य में प्रयुक्त मूल्य शब्द का यही अर्थ ग्राह्य है। वस्तुतः हमारा सम्पूर्ण जीवन क्या है? और क्या होना चाहिये? इन दो सीमान्तों से सम्बद्ध रहता है, जो है वह तथ्य और जो होना चाहिए, वह ‘मूल्य’ है।

हमारा जीवन सदैव ‘है’ की स्थिति से उठकर होना चाहिए। की उपलब्धि की ओर बढ़ता है और इसी के मूल में जीवन की

गतिशीलता कार्य रूप में व्यञ्जित होती है उसे मूल्य की संज्ञा से अभिधीत करते हैं।

‘मूल्य’ शब्द पदार्थ के आंतरिक गुण का वाचक है- जिसके कारण उस पदार्थ या वस्तु की लोक जीवन में उपयोगिता होती है। मानवीय सम्बन्धों में जब हम गुणों की चर्चा करते हैं तब हम पाते हैं कि मानवीय मूल्य भी होते हैं और मानवीय मूल्यों की आवश्यकता जीवन को सार्थकता के लिए आवश्यक है। क्योंकि जब तक इस सृष्टि पर सजग मनुष्य विद्यमान है वह किसी न किसी मानव मूल्य को अपनाए बिना नहीं रह सकता।

पुरुषार्थ मानव मूल्यों का पर्याय है। पुरुष के अर्थ में ही सभी जीवन के मूल्य समाहित हो जाते हैं। पुरुषार्थ का तात्पर्य है “प्रयत्न अथवा प्रयत्न से”, प्रयत्न जिनसे जीवन के उद्देश्य की पूर्ति होती है। पुरुषार्थ मानव जीवन के उद्देश्य ही पुरुषार्थ हैं।”²

भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा चार तत्वों का समन्वय माना जाता है। इसलिए शरीर के विकास के लिए अर्थ एवं सम्पत्ति को, मन के विकास के लिए काम एवं प्रेम की, बुद्धि के विकास के लिए धर्म की और आत्मा के विकास के लिए मोक्ष को पुरुषार्थ एवं लक्ष्य माना गया है। ये चारों पुरुषार्थ सभी दर्शनों द्वारा स्वीकारे गये हैं और ये भारतीय संस्कृति की आचार भीमांसा के आधार-स्तम्भ माने गये हैं। इन चारों पुरुषार्थों को ही मानव जीवन की सफलता का साधन स्वीकार किया जाता है।”³ पुरुषार्थ आवश्यक है क्योंकि मानव जीवन का उद्देश्य केवल पुरुष ही बने रहना नहीं है। मानव-जीवन का उद्देश्य है मानवीयता की ओर अग्रसर होना।”⁴ ‘मूल्य’ व्यक्ति परिवेश का एक अंग है। समस्त मानव जीवन, जिसका कोई अर्थ है, प्रवृत्तियों एवं मूल्यों के अन्तर्गत समाविष्ट हो सकता है। मूलतः मूल्य एवं परिवेश का परस्पर सम्बन्ध है।

मानव-मूल्य-संस्कृति आपस में गुणात्मक, भावात्मक, रगात्मक सम्बन्ध रखते हैं। मानव-मूल्य हमें एकता के सूत्र में बांधते हैं ये ही

संस्कृति का निर्माण करते हैं। अतः मानव-मूल्यों को गहराई से समझने के लिये संस्कृति को समझना आवश्यक है। संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं।

राष्ट्रकवि दिनकर ने भी संस्कृति के सम्बन्ध में अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है। "असल में, संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है। जिसमें हम जन्म लेते हैं।" ¹⁵ डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार "संस्कृति-विवेक बुद्धि का जीवन को भली प्रकार से जान लेने का नाम है।" ¹⁶

डॉ० सत्यकेतु के अनुसार, "चिंतन द्वारा अपने जीवन को सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए यत्न करता है, उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।" ¹⁷ धर्म, दर्शन और कला जब सामूहिक रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं तब संस्कृति का जन्म होता है। मनुष्य के समस्त जीवन-व्यापार को तथ्यों का रूप दिया जाता है। इन तथ्यों में जो प्रशंसनीय, उपदेश एवं वांछनीय हैं, उन्हें मूल्य नाम दे दिया जाता है। स्थायी और शक्तिशाली मूल्यों से ही संस्कृति का निर्माण होता है।

मानव-मूल्य सामाजिक जीवन का आवश्यक अंग है। मनुष्य अपने समाज में प्रचलित मूल्यों का, अनुकरण व इसी प्रकार की अन्य प्रक्रियाओं द्वारा ग्रहण कर लेता है। और उनसे अपने जीवन को निरन्तर परिष्कृत करता चलता है। मानव-मूल्यों को सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। मानव-मूल्य किसी एक व्यक्ति के विचार, अनुभव तथा क्रिया से उत्पन्न होते हुए भी मानव मूल्य का रूप तभी ग्रहण करते हैं जब उन्हें कोई समुदाय अथवा समाज अपना लेता है। मानव-मूल्य सार्वभौम मानवीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हैं। इन आकांक्षाओं की सहायता से ही मनुष्य अपनी अभिरूचियों एवं लक्ष्यों को वास्तविक रूप देने का प्रयत्न करता है। समस्त मानव-व्यवहार एवं मानव-सम्बन्ध मानव-मूल्यों की परिधि के अन्दर समाहित होते हैं।

स्थूल दृष्टि से मानव-मूल्यों के दो रूप मिलते हैं। परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होने वाले मूल्यों को 'सामयिक मूल्य' कहा जाता है जबकि शाश्वत मूल्य ज्यों के त्यों विद्यमान रहते हैं वे कालजयी होते हैं। सामाजिक दृष्टि से भी मानव मूल्यों को दो भागों एवं वैयक्तिक मूल्यों का सामंजस्य ही मानवीय मूल्यों का द्योतक है। सामाजिक मूल्यों में कुछ का सम्बन्ध अर्थ (धन) से है। शेष अर्थ से रहित भी हैं।

सामाजिक मूल्यों में सुन्दरता, सफलता, रहने का उच्च स्तर और शिक्षा आदि पर विशेष बल विदेशों में दिया जाता है जबकि भारत में जीवन के अन्य पहलू पर इसकी अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है। वैयक्तिक मूल्यों में स्वातंत्र्य, अहिंसा, मोक्ष आदि का समावेश किया जाता है और सामाजिक मूल्यों में आर्थिक एवं राजनीतिक मूल्य स्वीकार किये जाते हैं।

जिस प्रकार भारत में प्राचीन काल से मोक्ष को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्वीकारा जाता है उसी प्रकार पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिक मूल्यों को श्रेष्ठ माना जाने लगा है। वस्तुतः अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने मानव-मूल्यों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। इनमें प्रायः वर्गीकरण के आधार की समानता नहीं पाई जाती है। मानव-मूल्यों को कई प्रकार से विभाजित किया जाता है-

- (1) आंतरिक मूल्य और सहायक मूल्य
- (2) व्यक्तिगत मूल्य और सामाजिक मूल्य
- (3) निम्नतर मूल्य और उच्चतर मूल्य
- (4) पुराने मूल्य और नए मूल्य
- (5) अस्ति मूल्य और नास्ति मूल्य

'निम्नतर मूल्य के अंतर्गत मनोरंजनपरक, शारीरिक, सामाजिक और श्रममूलक मूल्य आते हैं और उच्चतर मूल्य में बौद्धिक, सौन्दर्यमूलक, चारित्र्यमूलक और धार्मिक मूल्य आते हैं। सामाजिक मूल्य के अंतर्गत वे सारे मूल्य आते हैं जो सामाजिक योग क्षेत्र से जुड़े होते हैं, जिसका धोर समर्थक मार्क्सवाद है। व्यक्ति विशेष की इच्छा, संवेदना और

धारणा से सम्बन्धित होते हैं। व्यक्ति-स्वातंत्र्य का सिद्धान्त इस प्रकार के मूल्य का समर्थक है।¹⁸ पाश्चात्य विद्वान 'अर्बन' ने मानव मूल्यों को आठ भागों में वर्गीकृत किया है-

- (1) शारीरिक मूल्य (Vodily Values)
- (2) आर्थिक मूल्य (Economic Values)
- (3) मनोरंजनात्मक मूल्य (Value of recreation)
- (4) सामाजिक मूल्य (Value of assoxation)
- (5) चरित्रात्मक मूल्य (Character Values)
- (6) सौंदर्यात्मक मूल्य (Aesthtic Values)
- (7) धार्मिक मूल्य एवं ईश्वर विषयक मूल्य (Religious Values)

इस विभाजन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्गीकरण पाश्चात्य विद्वान अर्बन का है तथा अर्बन परम्परागत भारतीय मानव-मूल्य-पुरुषार्थों का अध्येता रहा है वह भारतीय चिन्तन धारा से प्रभावित अवश्य रहा होगा। इस वर्गीकरण ने शारीरिक तथा आर्थिक मूल्यों को प्राथमिकता दी है क्योंकि शरीर को ही सभी आदर्शों का पालन करने के लिए मुख्य साधन माना गया है तथा शरीर पोषण हेतु अर्थ (धन) की आवश्यकता होती है। हमारे यहाँ भी 'शरीरमाध्यम् खलु धर्म साधनम्' कहकर शरीर को समस्त धर्मों का साधन स्वीकार किया गया है।

डॉ० हुकुमचन्द के अनुसार मानव-मूल्यों को विभाजित करना उचित है। उनके अनुसार मानव-मूल्यों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है-

- (1) भौतिक मूल्य
- (2) मानसिक या मनोवैज्ञानिक मूल्य
- (3) सामाजिक (सात्विक) मूल्य
- (4) आध्यात्मिक मूल्य

उपर्युक्त मूल्य - विभाजन का आधार क्रमशः जीवन में इनकी महत्ता या अनिवार्यता है। "भौतिक-मूल्यों की अपेक्षा मानसिक-मूल्य

उत्तम हैं सात्विक-मूल्य भौतिक एवं मानसिक मूल्यों से श्रेष्ठ है तथा आध्यात्मिक-मूल्य पूर्व के प्रकार के मूल्यों से श्रेष्ठतम है।¹⁹ मानव-मूल्य या साहित्यिक-मूल्य परस्पर सम्बद्ध है। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों में साहित्यिक-मूल्यों की चर्चा सबसे पहले आइ०ए० रिचर्डस ने की थी। रिचर्डस के अनुसार "साहित्य अथवा काव्य में ऐसे मूल्य निहित होते हैं जो कि मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य की ठीक उसी प्रकार रक्षा करते हैं जिस प्रकार कोई चिकित्सक मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करता है। रिचर्डस ने श्रेष्ठ काव्य अथवा साहित्य मूल्यवान होता है जो मनुष्य के परस्पर विरोधी भावावेगों में एक प्रकार का समतोलन स्थापित कर सके। लेखक की अपनी अनुभूतियाँ चिरस्थायी बन जाती हैं और साहित्य में सबसे अधिक मूल्य इन्हीं अनुभूतियों का होता है। तथापि साहित्य में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा मनोवैज्ञानिक रूप में ही होनी चाहिये।"¹⁰

साहित्य में व्यक्त मानव-मूल्य व्यक्ति के माध्यम से अनुभूत सामाजिक धारणाएँ हैं। साहित्यकार की आस्था शाश्वत-मूल्यों में तो रहती है, परन्तु वह सामयिक मूल्यों के प्रति भी सजग रहता है और अपने विवेकानुसार साहित्य में उनका प्रतिपादन भी करता है। अपने एक निबन्ध में डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने मूल्य का निर्णायक आदि स्वीकार करते हुए मूल्य के चार अवयव माने हैं- वस्तु, भोक्त, भोगक्रिया या संवेदना और आनन्द। साथ ही घोषणा की है कि एक के भी अभाव में मूल्य की स्थापना संभव नहीं। लेखक ने जीवनानुभूति-जन्य आनन्द की तीन कोटियाँ मानी हैं-- स्थूलऐन्द्रिय भोगजन्य-सुख एवं मानसिक आनन्द अर्थात् आत्मोपलब्धि-जन्य आनन्द काव्यकला और आध्यात्मिक साधना। डॉ० सिंह के इस सम्बन्ध में विचार महत्वपूर्ण हैं, "आनन्द ही साहित्य का मूल प्रश्न है। इस मूल्य की व्यापक जीवन-मूल्यों से सम्बद्धता है। प्रत्येक समय के साहित्य में जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा होती रहती है।"¹¹ मानव मूल्य को साहित्य से पृथक नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों का आधारभूत मूल्य आनन्द ही है।

वस्तुतः यह एक ऐसा मूल्य है जो मानव और साहित्य को एक धरातल पर ला खड़ा करता है। मानव-मूल्य और काव्य-मूल्य के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय ने तो यहाँ तक कहा है कि दोनों मूल्य एक ही हैं। गुलाबराय के अनुसार, "साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं हैं। अतः यह बात सर्वमान्य है कि जिसके जीवन में मूल्य हैं उसका साहित्य में भी मूल्य है।"¹²

विद्वान भी एकमत होकर मानव-मूल्यों की चर्चा में लोक-हित (लोक-कल्याण) को ही सर्वोपरि मूल्य स्वीकार करते हैं। इसे सर्वोच्च मूल्य स्वीकार करने को विद्वानों की स्पष्ट धारणा है कि इस मूल्य में जीवन की सर्वांगीणता का भाव निहित है। लोक-कल्याण की भावना में स्व-कल्याण भी समाविष्ट है। इसी आधार पर तुलसीदास जी भी सर्वजन हिताय की पुष्टि करते हैं। आज भी इसके महत्व को स्वीकार किया जाता है और इसे संसार में मनुष्य को परहित की भावना रखकर ही जीवन यापन करना चाहिये। यह परहित की भावना, मानवतावादी मानव मूल्यों को हम पंत के काव्य में वर्णित पाते हैं। मानवतावाद का विवेचन करने के बाद हमने पंत के काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोणों को रूपों में पाया है, उनका विस्तृत वर्णन हम आगे करेंगे।

सन्दर्भ

1. आधुनिक भारतीय चिंतन : डॉ० विश्वनाथ नरवणे, पृ० 89-90
2. रूदन भारतीय संस्थाएँ : डॉ. के.एम. कापड़िया एवं डॉ. गोपाल, पृ० 84
3. पाश्चात्य आचार विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन : डॉ. ईश्वरचन्द्र शर्मा, पृ० 19
4. भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति : गौरीशंकर, पृ० 216
5. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 656
6. स्वतंत्रता एवं संस्कृति : अनुवादक - विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, पृ०

7. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास : डॉ. सत्यकेतु, पृ० 99
8. फणीश्वर नाथ 'रेणु' का साहित्य : अंजलि तिवारी, पृ० 50
9. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य : हुकुम चन्द, पृ० 76
10. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र : डॉ० कृष्ण देव शर्मा, पृ० 276
11. व्यक्ति और सृष्टि : डॉ. शम्भुनाथ सिंह, पृ० 12
12. साहित्य के मूल्य - साहित्य समीक्षा : गुलाबराय, पृ० 18

चतुर्थ अध्याय पंत के काव्य में सामयिक चेतना

कवि या लेखक दृष्ट्य एवं सृष्ट्य कहा जाता है। रचनाकार सामान्य जनता को मानव मूल्यों से अवगत कराने का कार्य करते हैं। मानव मूल्य सर्वोपरि है और यही मानवतावादी दृष्टिकोण है। मानवतावादी दृष्टिकोण संस्कृति को बनाते हैं और जो कुछ जीवन को उजाला देता है, सुन्दर बनाता है, आगे ले जाता है, वही संस्कृति होती है। सुमित्रानंदन पंत के काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोणों और संस्कृति के प्रति उनकी गहरी आस्था का स्वर अत्यन्त मुखर है। उनकी काव्य रचनाएँ मानवता को उन्नत बनाने के लिये दिये गये संदेशों से युक्त हैं। उन्होंने नवमानवता का संदेश देते हुए कहा है-

“मैं नव मानवता का संदेश सुनाता”

पंत प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर मानवीय गुणों का विकास करना चाहते हैं। वह मानव हृदय को प्रेम से परिपूर्ण करके विश्वबन्धुत्व एवं लोककल्याण की भावना उत्पन्न करना चाहते हैं। उनका मानना है कि मानवता का विकास तभी होगा जब मानव के मन में व्याप्त ईर्ष्या और द्वेष के भाव नष्ट हो जायेंगे तथा सभी मानव परस्पर प्रेम भाव से भर जायेंगे। वह मनुष्यों को सन्देश देते हुए कहते हैं कि देवों की आराधना करने वाले मनुष्य तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि मानवता का विकास ही ईश्वर की सच्ची आराधना है

“मानवता को समझो हे देवो के आराधक

मानव के भीतर ईश्वर ही अवतरित साधक।”

पंत के लिये मनुष्य से ऊपर कुछ नहीं है। उनके काव्य में आम आदमी की आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है, उसकी हताशा और निराशा की अभिव्यक्ति है। भारत की लोकसंस्कृति की प्राणवाहिनी शक्ति में विश्वास होने के कारण ही पंत के काव्य में

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७०

मानवीयता का प्रतिपादन रहा है। पंत का काव्य मानवता का नाद करता हुआ जनमानस के मन मस्तिष्क को झंकृत करता प्रतीत होता है।

मानवतावादी दृष्टिकोण को परिभाषित करते हुए जैसा कि हमने पूर्वाध्याय में स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि वस्तुतः मानवतावाद क्या है? मानवीय मूल्य क्या है और किस प्रकार मानव मूल्य हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं? जब हम एक आदर्श जीवन की कल्पना को साकार रूप देना चाहते हैं तब हमने मानव मूल्यों के द्वारा एक आदर्श मानव और समाज की स्थापना का प्रयास किया है। जब वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टिकोण का सामंजस्य हो जाता है तब मानव-मूल्यों का आविर्भाव होता है। इन्हीं मानवतावादी दृष्टिकोणों को हमने पंत के काव्य में खोजने का तुच्छ प्रयास किया है। पंत के काव्य में ‘लोकहित, लोक-कल्याण का’ जिसे सर्वोच्च मानव-मूल्य स्वीकार किया जाता है- उच्च स्तर पर चित्रण किया गया है। विद्वान भी एकमत होकर मानव मूल्यों की चर्चा में लोकहित (लोक-कल्याण) को ही सर्वोच्च मूल्य स्वीकार करते हैं। इसे सर्वोच्च मूल्य स्वीकार करने को विद्वानों की स्पष्ट धारणा है कि इस मूल्य में जीवन की सर्वांगीणता का भाव निहित है। लोककल्याण की भावना में स्व कल्याण भी समाविष्ट है। इसी आधार पर ‘गोस्वामी तुलसीदास’ भी ‘सर्वजन हिताय’ की पुष्टि करते हैं।

‘गोस्वामी तुलसीदास’ परहित मूल्य की प्रतिष्ठा करते हुये उसे परम धर्म स्वीकार करते हैं। वस्तुतः परोपकार या परहित जीवन का ऐसा मानव-मूल्य है जिसे शाश्वत मूल्य माना जा सकता है। आज भी इसकी महत्ता स्वीकार की जाती है और जब तक एक भी मानव इस धरती पर विद्यमान है वह समाज के संगठन में रहता है तब तक परहित की भावना मनुष्य में रहनी ही चाहिये। पंत के काव्य में मानवतावादी मानव मूल्यों को हम सर्वत्र वर्णित पाते हैं। पंत के काव्य में हम मानवतावादी दृष्टिकोणों को निम्न लिखित रूपों में पाते हैं-

1. संवेदना एवं करुणा की अन्तर्धारा के रूप में।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७१

2. देश भक्ति अथवा राष्ट्रीय भावना के रूप में।
3. मानव के चारित्रिक उत्कर्ष के रूप में।
4. नारी के उत्थान और नारी के प्रति उदार दृष्टि के रूप में।
5. सामाजिक विकास और शिक्षा विकास की भावना के रूप में।
6. अन्तर्राष्ट्रीय एकता की भावना के रूप में।
7. संस्कृति की रक्षा के प्रति उदार दृष्टि के रूप में।
8. सामाजिक चिंतन के प्रति उदार दृष्टि के रूप में।

पंत के काव्य का गहन अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका काव्य संवेदना को लिये है और वे 'मानवतावाद' के पोषक सदैव से रहे हैं। उनके 'मानवतावादी दृष्टिकोण' पर गांधी जी के मानवतावाद का प्रचुर प्रभाव रहा है। पंत के काव्य में 'मानवतावाद' को हम निम्न बिंदुओं द्वारा अध्ययन करेंगे।

1. संवेदना एवं करुणा की अन्तर्धारा के रूप में :

पंत मध्यम वर्ग को 'गत संस्कृति का दास : विचित्र विश्वास विधायक' दिखायी देता है। 'कृषक' शीर्षक रचना में वे किसान को भी दीन-हीन, अभागा और भारवाही पशु की नियति ढोते देखते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी आस्था का विषय केवल श्रमजीवी रह जाता है। दीन हीन वर्ग का व्यक्ति भी उन्हें 'मानव पशु' लगता है। सभ्यता-संस्कृति से निर्वाचित ग्राम-लोक उन्हें साक्षात् नरक लगता है। अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं-

यह तो मानव लोक नहीं रे, यह नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित;
झाड़-फूस के विवर, यही क्या जीवन शिल्पी के घर?
कीड़ों से रेंगते कौन ये, बुद्धि प्राणी नारी नर?
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग में,
गृह-गृह में है कलह, खेत में कलह, कलह है जग में।¹

पंत के हृदय में प्रत्येक मानव के लिये करुणा है संवेदना है वह प्रत्येक मानव को इस संसार का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं उनके मन सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७२

में एक सहज भाव जगता है-

क्यों न एक ही मानव-मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर?
जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने मानव हित निश्चया²

कवि पंत 'युगवाणी' कह 'मानव' कविता में वह मानव के अपूर्ण जीवन पर दुख प्रकट करता है। जीवन की दरिद्रता, कुरूपता, अपमान, अंधकार, दुख आदि पशुतुल्य स्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है उनके प्रति करुणा एवं संवेदना के भाव को रखते हुये उसके जागृत एवं उज्ज्वल भविष्य की ओर प्रेरित करता है ताकि वह स्वतन्त्र और सुखी हो सके यथा-

पशु जीवन के तन में

जीवन रूप मरण में

जाग्रत मानव।

सत्य बनाओ सपनों को

रच मानवता नव,

हो नवयुग का भोरा³

इस प्रकार 'युगवाणी' में प्रस्तुत मानवतावाद में सक्रियता के दर्शन होते हैं। भाव एवं कर्म के साम्य द्वारा कवि पृथ्वी पर नवमानव संस्कृति से आलोकित मानव-निर्मित स्वर्ग की कल्पना करता है-

मुक्त जहाँ मन की गति जीवन में रति

भव मानवता जग-जीवन परिणति

संस्कृत वाणी, भाव, कर्म, संस्कृत मन,

सुन्दर हो जनवास, वसन सुंदर तन!

ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित

नव-मानव-संस्कृति, किरणों से ज्योतिता⁴

पंत का मानना है कि मानव-क्षमता और मानव-दुर्बलता एक दूसरे को चुनौती दे रही हैं। धरा पर सृजन और विश्व संहार आने

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७३

सामने खड़े एक दूसरे को ललकार रहे हैं। ऐसे युग में पंत का विचार है कि 'मनुष्य के हर वर्ग को मानवता की पुनः स्थापना का प्रयत्न करना चाहिये।' 'युगपथ' की रचना में पंत विश्वास व्यक्त करते हैं कि मानवता को बंदी बनाने वाली, मानव को देश और जाति की सीमा में बांधने वाली दुर्धर संस्कृतियाँ अवश्य नष्ट होंगी। मानवता के स्थिर पद के लिये पंत के मन में जो संवेदना थी जो करुणा थी जो कर्तव्य और दायित्व था उसे उन्होंने कभी विस्मृत नहीं होने दिया उनके अनुसार-

मैं नवमानवता का संदेश सुनाता,
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता,
आदर्शों के मरु जल से दग्ध मृगों को
मैं स्वर्गगा स्मित अन्तर्पथ बतलाता,
जन-जन को नव मानवता में जागृत कर
मैं मुक्त कंठ से जीवन रण शंख बजाता।¹

पंत के हृदय में प्रत्येक जन के लिये संवेदनशीलता है वे एक ऐसी सृष्टि का निर्माण करना चाहते हैं जहाँ उनका स्वर, विचार और मन जगत के स्वर, विचार और मन में समाहित हो जाये। जहाँ व्यक्ति और समाज एकता के अनंत आनन्द का उपभोग कर सके। पंत तो अपने निजत्व की समग्र में निहित पाते हैं-

स्वयं युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब
निश्चेतन, उपचेतन, अन्तश्चेतन के जग,
परिवर्तन हो रहे, नये मूल्य में विकसित
उन पर आश्रित निखिल सांस्कृतिक संबंधों को
रूपान्तर हो रहा आज-आवर्त शिखर में
धूम पुनः जो संयोजित हो रहे धरा पर
विगत निषेधों, रूढ़ि वर्जनाओं को सहसा
छिन्न-भिन्न कर अपने प्रलयंकर प्रवेग में।²

'शांति और क्रान्ति' कविता में पंत यहाँ स्पष्ट देखते प्रतीत होते हैं कि युगों-युगों से आक्रान्त, पीड़ित मानव अब परिवर्तन के

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७४

दिशा में अग्रसर हो रहा है। पंत ईश्वर पर विश्वास रखते हुये उससे वह शक्ति पाने के आकांक्षी रहे जिसके द्वारा वे मानव-हित कर सकें। दृष्टव्य है इन पंक्तियों में-

"मैं उसका प्रेमी बनूँ नाथ।
जिसमें मानव हित हो समान
पाकर प्रभु! तुमसे अमर दान,
करने मानव का परित्राण।
ला सकूँ विश्व में एक बार,
फिर से नव तहवन का विहान।"³

पंत के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुये डॉ० भगीरथ मिश्र लिखते हैं- "मानव धर्म पंत का सहज धर्म रहा है। उनका समस्त काव्य इस मानवता के धर्म की व्याख्या, स्थापना और विकास जन-जन के कल्याण के मार्ग खोलने की अमर गाथा है।"

2. देशभक्ति एवं राष्ट्रीय भावना के रूप में :

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन काल में राष्ट्रप्रेम को जाग्रत करने के लिये पंत ने मातृभूमि में माता के रूप में देखा। उनके लिये मातृभूमि माता थी किन्तु उसका रूप प्रचलित रूप से भिन्न दृष्टव्य है-

"भारत माता
ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा जमुना से आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी।"⁴

पंत के जीवन में भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन एवं देश-प्रेम की ज्योति इतनी प्रखर थी कि उसकी उष्णता से कोई भी अछूता नहीं रह सका। कविवर पंत की रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण के गीत सुनाई पड़ते हैं। 'वीणा' संग्रह की प्रकृति सौंदर्य से परिपूर्ण रचनाओं में 'तिलक हा! भाल तिलक' (लोकमान्य तिलक की मृत्यु

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७५

पर) और 'नीरव व्योम! विश्व नीरव' (प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर) रचनाओं का लिखा जाना इसी बात का द्योतक है।

भारत का गौरवपूर्ण सांस्कृतिक वैभव और मातृभूमि भारत पर आस्था उनकी राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा बने। डॉ० भगीरथ मिश्र का कथन है कि पंत तो एक ऐसे कवि थे जिनकी आत्मा दिन-रात राष्ट्र के उत्थान की चिंता करने में, उसको सजाने संवारने में तथा पुरातन रूढ़ियों को तोड़कर नव निर्माण में संलग्न थी।

पंत के लिये मातृभूमि पर गौरव का कारण केवल उसका अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य नहीं है। उन्हें तो मातृभूमि पर गर्व इसलिये है क्योंकि उनका देश संसार को प्रथम संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाला है। मानवता के निर्माण के लिये सत्य और अहिंसा का मंत्र देने वाला भी उनका ही देश है-

जिसे राम लक्ष्मण औ' सीता
बना गये पद धूलि पुनीता।
जहाँ कृष्ण ने गायी गीता,
बजा गये प्राणों में वंशी।⁹

पंत का अपने परतंत्र देश को स्वाधीन कराना और देश के प्रति उनकी भावनाओं को हम निम्न पंक्तियों में देख सकते हैं। यथा-

'प्रथम स्वाधीन बन सकें
यही परम हो लक्ष्य हमारा
फूँके युग जागरण शंख हम
जन स्वतन्त्रता का दे नारा
मुक्त देश के संग ही होंगे
गाँव मुक्त गाँवों के संग जन
साथ कटेंगे सबके बंधन
होंगे संग ही कष्ट निवारण।' ¹⁰

'भारतगीत' रचना में पंत मातृभूमि भारत के पर्वत, सरिताएँ वन उपवन इत्यादि के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते हैं क्योंकि पंत का

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७६

मानना है कि अपनी मातृभूमि का पूर्ण परिचय मातृभूमि को जाने बिना नहीं मिल सकता, दृष्टव्य है-

'गौरव भाल हिमाचल उज्ज्वल
हृदय पर गंगा जल
विंध्य श्रेणीवत् सिन्धु चरण नत
महिमा शतमुख गाता
आम्रबौर तालीबन, मलय, पवन पिक कूजन
जन मत नित हर्षाता
अरुणोदय-प्रभु ज्योति क्षत्र नभ
ऊपर नील सुहाता।' ¹¹

पंत ने अपनी रचनाओं में वर्ग, जाति आदि के भेदों के कारण विखंडित होती राष्ट्रीयता का उल्लेख किया है यथा-

'मानवमन में गिरि कारा-सी
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बंदी की है मानवता को
रच देश जाति की भित्ति अमर
ये डूबेंगी, सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकास।' ¹²

विभिन्नवादों और विचारों में भारतीय जन शक्ति विभाजित होती गयी जो राष्ट्रीय एकता के लिये घातक सिद्ध हुई। परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता निर्बल और भीरु बनती गयी। स्वाधीनता आंदोलन की सफलता के लिये बल और साहस का संचार, इस भीरुता और निर्बलता को दूर करने पर ही संभव था। पंत के विचार से, विनम्र रहकर अत्याचार सहना, कायरता और भीरुता का चिन्ह है उनके अनुसार-

'तुम विनम्र रह
भीरु बन गये, कायर
जीवन प्रांगण में

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७७

यह सौजन्य नहीं रे दुर्बल
आत्म वंचना यह मन का छल
मौन मूक रह
बने नगण्य करुणतर
तुम लोक नयन में¹³

स्वाधीनता आंदोलन को सफल बनाने में कवियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंत ने अपनी काव्यरचनाओं में राष्ट्रीय आंदोलन के उद्घोष को तीव्र करने का प्रयास किया। पंत को घंटे की ध्वनि अपने कर्तव्य के लिये प्रेरित करती है-

“उठो सजनि/घंटे की ध्वनि में
गूँज रहा है सुनो, हमारा
प्रिय कर्तव्य कठोर
जाति सेवा की उज्ज्वल भोर
बठाती है वह कर इस ओर।”¹⁴

15 अगस्त 1947 को भारत को ब्रिटिश सत्ता की पराधीनता से मुक्ति मिली किन्तु स्वतन्त्रता के उल्लासमय वातावरण के इतिहास में देश विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों का रक्त रंजित अध्याय भी जुड़ गया। फिर भी लम्बे स्वतंत्रता संघर्ष के बाद मिली स्वतंत्रता में लोगों ने सुख और संतोष की सांस ली। भारत का स्वाधीनता संग्राम संसार में अहिंसक क्रान्ति का अद्वितीय उदाहरण बन गया। पंत ने इसका उल्लेख अपनी ‘आत्मिका’ रचना में किया है द्रष्टव्य है-

“भारव अब स्वाधीन हो चुका (शेष अभी मानवता का रण)
बहिरन्तर गृह रचना कर नव उसे संजोने भू दिक प्रांगण!
महीयसी घटना यह युग की जन भू के जीवन मंगल हिता।
यह अधिमानस भूमि धरा की जहाँ शांति तप बल से
अर्जित।”¹⁵

इस प्रकार देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सबसे महत्वपूर्ण और दुःखपूर्ण घटना महात्मा गांधी की भारतीय नागरिक द्वारा निर्मम

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७८

हत्या थी। पंत ने शोक सागर में डूबकर गांधी जी की प्रशस्ति और अद्भुतजलि के लेख और गीत लिखे। पंत के काव्य में हमें राष्ट्रीय मानवता के दर्शन होते हैं।

3. मानव के चारित्रिक उत्कर्ष के रूप में :

पंत का प्रकृति प्रेम सर्वविदित ही है। कवि की दृष्टि के साथ प्रकृति की गोद में रहने वाले मानव पर भी पड़ी है। पंत का मन मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये छटपटाने लगा। इस संबंध में कवि पंत का वक्तव्य है “मुझे प्रतीत होने लगा जैसे प्रकृति का सबसे सूक्ष्म निगूढ़, गहन तथा जटिल रूप वनस्पति तथा पशु-पक्षी जगत से कहीं अधिक महत्वपूर्ण मानवजीवन से अभिव्यक्त हुआ है।”¹⁶

“सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम्”¹⁷

मानव की इस सुन्दरता को पंत जी वर्तमान मानव जीवन की श्रद्धाओं, विषमताओं, दरिद्रताओं, मानसिक दुर्बलताओं तथा अभावों में से खोजकर उसे विश्व प्रकृति के अनुरूप विकसित कर मानव जीवन में स्थापित करने के आकांक्षी बन गये। कवि के लिये प्रकृति के स्थान पर मानव आदर्श बन गया था-

“सीखा तुमसे फूलों ने मुख देख मंद मुस्कराना,
तारों ने सजल नयन हो, करुणा किरणों बरसाना।”¹⁸

पंत मानव के चारित्रिक उत्कर्ष की पुष्टि अपने इस कथन से भी करते हैं कि “मनुष्य ही इस सृष्टि में सबसे बड़ा सत्य है, इसके परे कुछ नहीं। इस प्रकार का अनुभव व्यास से लेकर रवीन्द्रनाथ तक प्रायः सभी जीवन दृष्टा मनीषियों को हुआ है।”¹⁹ आज का विज्ञात ज्ञात-अज्ञात रूप से जिसकी सुदृढ़ नींव डाल रहा है, आज की राजनीतिक आर्थिक संस्थाएँ जिसकी विराट भवन की रूपरेखा का वाचा निर्माण करने में अग्रत्यक्ष रूप से संलग्न हैं। आज का दार्शनिक जिसके शुभ्र शिखर पर मंगल कलश स्थापित करने के स्वप्न देख रहा

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/७९

है और कवि एवं कलाकार जिसमें मांसल रंगों का वैचित्र्य तथा अकृत्रिम सौंदर्य भरने की साधना में लगा हुआ है, वह एक मानवता की कल्पना तथा एक भू-जीवन का स्वर्ग ही तो है-

“रच मानव के हित नूतन मन, चाणी वेश भाव नव शोभन,
स्नेह सुहृदयता हो मानस धन करे मनुज नव जीवन यापन।”²⁰

पंत जी मानव का चारित्रिक उत्कर्ष चाहते हैं। अपने काव्य में पंत जी ने निराशा, अज्ञान, अंधकार, क्षुद्रता, संकीर्णता, दीन हीनता आदि को ध्वस्त करने की प्रेरणा देने वाले विचार व्यक्त किये हैं। उनसे आन्दोलित होकर पाठक अन्याय, अत्याचार से जूझने की प्रेरणा एवं साहस अर्जित करता है। पंत के काव्य में मानवता को घेरने वाले अशिव और अवांछनीय तत्वों से संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाले ऐसे विचार व्यक्त हुए हैं जो केवल व्यक्ति ही नहीं समष्टि के पुनर्जागरण विकास और समृद्धि में सहायक हो सकते हैं। वैचारिक स्तर पर पंत जी का व्यक्तित्व उनकी जीवन आस्था के अनुकूल ही उनकी इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है-

“मानवता का रक्त मांस
जगजीवन से चिर ओत-प्रोत
निखिल विचारों का बहता
आ अरूण रूधिर में जीवित स्रोत।”²¹

तथा

“जीवन की क्षणधूलि रह सके जहाँ सुरक्षित,
रक्त मांस की इच्छाएँ जन की हो पूरित।
मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें मानव-ईश्वर!
और कौन सा स्वर्ग चाहिये तुझे धरा पर।”²²

पंत जी को आशा थी कि नवीन मूल्यों पर आधारित ऐसे सामाजिक संगठन में कोमल मनुज-कलेवर को भविष्य में अधिक से अधिक मानवोचित साधन मिल सकेंगे और वह अपने लिये ऐसा मानवता का महल खड़ा कर सकेगा जिसमें मनुष्य की क्षणधूलि

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८०

अधिक सुरक्षित रह सकेगी।

कवि के अनुसार आज का मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिये दूसरों को बड़ी से बड़ी हानि पहुंचाने में भी संकोच नहीं करता। संचार और आवागमन के अभूतपूर्व क्षमता सम्पन्न साधनों के उपलब्ध हो जाने से जहाँ बाहरी दृष्टि से सारी दुनिया के मनुष्य एक दूसरे के बहुत निकट आ रहे हैं, वहीं सामूहिक स्वार्थ के स्थान पर संकुचित वैयक्तिक स्वार्थ साधन की प्रवृत्ति आश्चर्यजनक गति से बढ़ती दिखायी दे रही है। जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत द्वेष और द्वन्द्व बढ़ रहा है इसका संकेत करते हुए पंत जी ने लिखा है-

“दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन
लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल इच्छा से निर्धन!
आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बंधन विवेक
चिर आकांक्षा से ही थर-थर
उद्वेलित रे अहरह सागर
नाचती लहर पर हहर लहर।”²³

पंत जी जीवन के संघर्षों का समाधान वैयक्तिक रूप से नहीं चाहते थे, साथ ही अति-सामाजिकता भी उन्हें मान्य नहीं थी। वह दोनों का समन्वय चाहते थे। उनकी मान्यतानुसार-

“व्यक्ति समाल परस्पर घुलमिल जायेंगे जब
भर जायेगा अन्तराल दोनों का गहरा?
चिन्ताओं से मुक्त मनुज आत्माननति में रत
संस्कृति का नव स्वर्ग बसायेगा धरती पर।”²⁴

पंत प्रत्येक मनुष्य के जीवन में मानवता का आरोहण और स्वर्ग सागान सुख वैभव की छाया की अवधारणा करते हैं। यथा-

“जगत जीवन में हो तुम मूर्त
धरा कर करे स्वर्ग अभिसार

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८१

एकता का रच स्वर्णिम सेतु
मनुजता हो भव सागर पार
देश राष्ट्रों को कर भू मुक्त
खोल निर्मम जन अन्तर द्वार
जाति धर्मों से बंधन मुक्त
बने मानवता भू श्रृंगार।'25

पंत जी एक नयी सृष्टि का निर्माण करना चाहते हैं। जहाँ उनका स्वर, विचार और मन जगत, विचार और मन में समाहित हो जाये। जहाँ व्यक्ति और समाज एकता के अनन्त आनन्द का उपभोग कर सकें। पंत तो अपने निजत्व को समग्र में निहित पाते हैं-

“स्वयं युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन, उपचेतन, अन्तश्चेतन के जग
परिवर्तन हो रहे, नये मूल्य में विकसित
उप पर आश्रित निखिल सांस्कृतिक संबंधों का
रूपान्तर हो रहा आज आवर्त शिखर में
धूम पुनः जो संयोजित हो रहे धरा पर
विगत निषेधों, रूढ़ि वर्जनाओं को सहसा
छिन्न-भिन्न कर अपने प्रलयंकर प्रवेग से।'26

‘शांति और क्रान्ति’ रचना में पंत यहाँ देखते प्रतीत होते हैं कि युगों-युगों से आक्रांत, पीड़ित मानव अब परिवर्तन की दिशा में अग्रसर हो रहा है। वह मानव में इतना चारित्रिक विकास चाहते हैं कि उसमें ईश्वरत्व के दर्शन हों। वे ईश्वर से वह शक्ति पाने के आकांक्षी रहे जिसके द्वारा वे मानव हित कर सकें। दृष्टव्य है इन पंक्तियों में-

‘मैं उसका प्रेमी बनूँ नाथ।
तिसमें मानव हित हो समान
पाकर प्रभु! तुमसे अमर दान
करने मानव का परित्राण।
ला सकूँ विश्व में एक बार

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८२

फिर से नव जीवन का विहान।'27

इस प्रकार हमें विदित होता है कि पंत के काव्य में हमें मानव के चारित्रिक उत्कर्ष के दर्शन स्पष्ट दिखायी देते हैं।

4. नारी के उत्थान और नारी के प्रति उदार दृष्टि के रूप में :

पंत के मन में नारी के लिये श्रद्धा, उनके विकास की आकांक्षा तथा समाज में उसकी दयनीय अवस्था को लेकर चिंता रही है। प्रकृति में भी उन्होंने नारी के विभिन्न रूपों और अवस्थाओं को अनुभव किया है जैसे-

“जिसकी सुन्दर छवि ऊषा है
नव वसंज जिसका श्रृंगार
तारे हार किरीट सूर्य शशि
मेघकेश, स्नेहाश्रु, तुषार
मलयानिल मुख वास जलधि मन
लीला लहरों का संसार।'28

प्रकृति के कार्य व्यापार में भी पंत को नारी का कर्मठ रूप परिलक्षित होता है। दृष्टव्य है-

“कहो तुम रूपसि कौन
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहरा छाया केश कलाप
मधुर मंथर मृदु मौन।'29

पंत के मानस में भारतीय नारी की उपेक्षित सामाजिक स्थिति तथा उसके समर्पित जीवन के प्रति करुणा तथा सम्मान की भावना रही है। प्रकृति में भी वे नारी के इस रूप को देखते हैं दृष्टव्य है-

“कौन! कौन तुज परिहल्ल वसना,
म्लान मना भू पतिता सी?
धूलि धुसरित मुक्त कुन्तला
किसके चरणों की दासी?'30

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८३

इस अंश में 'छाया' को पंत ने पतिव्रता नारी के रूप में देखा जो पति द्वारा प्रताड़ित होने पर भी उसकी सेवा में अपना सुख आनंद मनाती है।

पंत जी ने नारी के भाव सौंदर्य (आन्तरिक सौंदर्य) को अधिक महत्व दिया है। 'मजदूरी' में इसी भाव सौंदर्य को पंत इस प्रकार देखते हैं-

“सर से आँचल खिसका है धूल भरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष-ढोती तुम सिर धर कूड़ा
हँसती, बतलाती, सहोदरा-सी, जन-जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप-सा तन से।”³¹

'गीत-अगीत' शीर्षक काव्य-संग्रह के एक गीत में दहेज-प्रथा से होने वाले नारी के नारकीय जीवन का सजीव चित्रण पंत जी ने किया है। दहेज देने में असमर्थ अपने माता-पिता का दुःख देखकर एक पढ़ी-लिखी कन्या कुँए में डूबकर मर गयी-

“कुमारी कुँए में डूब मरी
एक प्रकार समझिये तरी।
कन्या मरणं
तत्काल दुःखं
परिणाम सुखं.....
चरितार्थ कर गयी,
हाँ, सखियों को आर्त कर गयी।
किन्तु जूँ भी नहीं रेंगी
रीति बधिर कानों में-
रक्ती फर्क नहीं पड़ा
तिनक के मानों में।”³²

पंत जी की दृष्टि में वर्तमान भारतीय परम्परा की एक अतिशय ज्वलंत समस्या है- नारी का पिछड़ापन। हमारे शास्त्रों में इस तरह की उक्तियाँ जरूर मिलती हैं कि- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः'

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८४

किन्तु हमारे समाज में अधिकांश नारियाँ कितनी असहाय तिरस्कृत, व्यक्तित्वहीन और अशिक्षित हैं यह कौन नहीं जानता? पंत जी का सचेत समाज- दृष्टि नारी की दुखस्था की ओर से असावधान रहती, यह कैसे संभव था? नारी की वर्तमान स्थिति का चित्रण करने वाली उनकी युगवाणी की 'नारी' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ कितनी मार्मिक हैं-

“योनि मात्र रह गयी मानवी निज आत्मा कर अर्पण,
पुरुष प्रकृति की पशुता का पहने नैतिक आभूषण।
नष्ट हो गयी उसकी आत्मा, त्वचा रह गयी पावन,
युग-युग से अवगुंठित गृहणी सहती पशु के बंधन।”³³

इसी संदर्भ में उनकी 'नारी' शीर्षक दूसरी रचना भी, जो उनकी 'ग्राम्या' काव्य-संग्रह में संकलित है, ध्यान देने योग्य है-

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित
पूत योनि वह : मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित
XXXX

वह समाज की नहीं इकाई, शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन-मान, मान पर नर के है अवलम्बित।
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नहीं प्रदर्शित
दृष्टि स्पर्श संज्ञा सी वह हो जाती सहज कलंकित।”³⁴

नारी को आधुनिक व पौराणिक संदर्भों में ग्रहण करते हुए पंत ने उसकी ऐतिहासिक अवस्थाओं पर ही दृष्टिपात नहीं किया है बल्कि उसकी सामाजिक मर्यादा और गरिमा का भी उल्लेख किया है। डॉ. विजयबहादुर सिंह के विचारानुसार 'पंत ने नारी का गौरववान देवी, माँ, सहचरी, प्राण आदि शब्दों के माध्यम से करते हुए नारी के प्रति सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना का प्रत्यय दिया है। पंत नारी के अधुनातन और स्वतन्त्र व्यक्तित्व की आकांक्षा करते हैं। 'मुक्त करो नारी को मानव' इसी के साथ प्रणय और वासना का भाव भी संबद्ध है किन्तु वह ज्योति मात्र न जाये इसके लिये भी वह सचेष्ट है। क्योंकि स्वर्ग नारी

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८५

के हृदय में है और वे उसके व्यक्तित्व स्थापना के आग्रही हैं। नारी को सहज स्नेहासिक्त स्वरूप पर पंत मुग्ध रहे हैं। वह स्वरूप मांसल उतना नहीं जितना स्वर्गिक व अनुपम है।

“मूर्तिमयी ऋतु की शोभा सी
तुहिनों की तनिया में न्हायी
सुधर सिरी थी खड़ी द्वार पर
शुभ्र उषा सी सहज सजायी।”³⁵

X X X X
‘भले ज्ञानविज्ञान बनाये मानवता का सौध चन्द्रास्मित,
शोभा-देही राग-शिखा ही स्वर्ग-ज्योति कर सकती
वितरित।’³⁶

लोकायतन के सामाजिक चेतना विकास वाले ‘ग्राम-शिशिर’ खण्ड में उन्होंने नारी के ‘अधुनातन’ पर पारम्परिक समग्रता को रूपायित किया है।

“नारी गूढ़ समस्या जग की
नर-नारी डर का है परिणय,
राग-चेतना का विकास ही
निखिल प्रगति का सार न संशय”³⁷

लोकायतन के आदर्श गाँव सुन्दरपुर की नायिका सिरी सोचती है, नारी जीवन के आधुनिक प्रसंगों वाली जीवन-यापन की त्रासदी को

“क्यों स्त्री की आँखों में नित खारा पानी,
दुःख ने मूर्ति गढ़ी हो उसकी, आँसू ने हो लिखी
कहानी।”³⁸

हमारा भारतीय समाज पुरुष वर्ग को अपनी पूर्व पत्नी की मृत्यु पर पुनर्विवाह की अनुमति देता है पर नारी का वैधव्य उसके लिए अभिशाप माना जाता है। वह समाज में एक शाप बन्धित देह बन जाती है। वह हृदय का स्नेह प्रेम क्यों नहीं वितरित कर पाती? ‘लोकायतन’

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८६

की सिरी भी यह सोचने पर मजबूर हो जाती है कि वह अपना तन ‘बलि-पशु’ के रूप में जड़ समाज के लिये आहत न होने देगी।

“नहीं जानती वह क्यों स्त्री के
सिर पर कालिख सा विधवापन
बुद्ध देह अर्पित समाज को
मुक्त हृदय मन प्रभु का भाजन।
क्यों न देह से ऊपर उर का
स्नेह संचरण हो जन विस्तृत
बंधा नाल से पूल धरा में
करता निज-उर सौरभ वितरित।
सोच रही थी जड़ समाज को
वह क्यों बेचे बलि-पशु सा तन,
भैया का वह कार्य करेगी,
जन-जन का होगा उसका मन।”³⁹

कवि पंत वैचारिक रूप से आधे विश्व की सृजनात्मक शक्ति को अत्याधुनिक के रूप में ही नहीं बल्कि, नारी की गौरवमयी, आशीलता, समतामयी स्थिति को श्रेयस्कर मानते हैं। वे नारी हृदय के पावन उन्मुक्त प्रसंगों गौरव को यथावत सम्मान देना चाहते हैं-

“धिक् वह देश जहाँ नारी शोभा
नहीं पुरुष को करती उन्मेषित
मानों प्राणों को, नवयौवन की
उच्च प्रेरणा से कर दिग् दीपित.....
जहाँ मुक्त आदान प्रदान नहीं
स्त्री पुरुषों के हृदय का पावन
भू जीवन रचना शोभा के हित
अर्पित जहाँ न मुक्त कर्म तन-मन!
धिक् वह सदाचार जो स्त्री-नर का
सदा परस्पर रखता भय शंकित,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८७

बौनी नीति विवश करती मन को
भाव अनुर्वर जीवन यापन हिता'⁴⁰

नारी सुरभि है, मानवता का सार है, श्री शोभा-गरिमा है, ज
सुषमा का स्वर्णोदय होता है.....

“मानवता की सार सुरभि नारी
श्री शोभा गरिमा के प्रतिमाजन
XXX

मुक्त हृदय में स्त्री-नर के जगता
भावों की सुषमा का स्वर्णोदय,
नील गहनता में प्रतीति सुख की
लय होता उर, मिटता भय संशय'⁴¹

कवि पंत ने नारी जीवन की आधुनिकता समानाधिकार, साहस
भाव और सम्मानमय जीवन यापन की शैली में स्वीकारी है। 'लोकायत
में विदेशी युवती का कवि से मिलने के लिये आना उसकी विवेकशील
व ज्ञान बोध का प्रतीक स्वरूप है। कवि ने नारी को सदैव सम्माननी
दृष्टि से देखा और उसके प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया है।

5. सामाजिक विकास और शिक्षा विकास की भावना के रूप में

मानव संस्कृति को एक महान् विश्व-संचरण में प्रतिष्ठित कर
के लिए और युग-पुरुष के स्वर्ण-शुभ्र-किरीट में मानवचेतनों के छि
हुए रत्नों को जड़ने के लिए पंत जी एक विशिष्ट शिक्षा-व्यवस्था क
आवश्यकता को भी समझते थे। वर्तमान शिक्षा-पद्धति उस आवश्यकता
की पूर्ति नहीं कर सकती, इसकी उन्हें प्रतीति थी। वर्तमान शिक्षा-पद्धति
के संबंध में उनका मुख्य असंतोष यह था कि उसमें केवल बुद्धि क
ही शिक्षण होता है, हृदय की शिक्षा नहीं होती। उनके विचार क
वास्तविक शिक्षा तो हृदय की ही शिक्षा है जो मनुष्य की संकीर्ण
भावनाओं को उदार बनाती है, उसके हृदय में मानव मात्र ही नहीं
पशु-पक्षियों एवं कीट-पतंगों के प्रति भी प्रेम व करुणा का भाव
जगाती है। 'ज्योत्स्ना' नामक नाट्य-कृति में कमला नाम की पात्री मान

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८८

पंत जी के इन्हीं विचारों को वाणी देते हुए कहती है- “हृदय की
शिक्षा में हमारी विश्व-संस्कृति के, मानव-प्रेम के एवं समस्त
जीवन-कल्याण के मूल अन्तर्निहित हैं। जो शिक्षा हृदय के कपाट
खोलकर मनुष्य के भीतर विश्वप्रेम की उन्मुक्त वायु नहीं भर सकती,
वह शिक्षा हमारे सत्य की कुंजी नहीं हो सकती।'⁴²

पंत जी युग-जीवन के विकास के लिए शिक्षा को कितना महत्व
देते थे, इसका परिचय हमें 'ज्योत्स्ना' के ही दूसरे पात्र मि. रहमान की
इस उक्ति में मिलता है- “वास्तव में हमारे युग का हृदय हमारा
शिक्षा-विभाग है। नवयुवक और नवयुवतियों में उच्च मानवीय आदर्शों
एवं विश्वजनीन भावों का पूर्ण विकास हो सके, उनके हृदय मानव-प्रेम
के मधु से एवं सदाचार के सौरभ से ओत-प्रोत हो जायें, इसी ओर हमारी
सबसे अधिक शक्ति झुकी है। शिक्षा हृदय की साधना है, ज्ञान-पद्म के
मूल हृदय के सरोवर में हैं, बुद्धि से ज्ञान लेने में नहीं। हमारी समस्त चेष्टा
इस ओर रहती है कि हमारे विद्यार्थी बुद्धि द्वारा जिस सत्य के दर्शन मात्र
करते हैं, उसे हृदय की अविराम साधना से अपने में साकार कर लें। वे
अपने ज्ञान की सजीव मूर्ति बन जायें। उनके हृदय की समस्त शक्ति,
भावनाओं की समस्त शिराएँ उनके ज्ञान को सौंचकर, उनमें सत्य का बोध
ही नहीं, सत्य का प्रेम भी अंकुरित कर दें।'⁴³

वर्तमान शिक्षा-पद्धति शिक्षा के उस उद्देश्य को पूरा करने में
असमर्थ है। ऐसा केवल इस कारण नहीं है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति
केवल बौद्धिक विकास को ही अपना लक्ष्य बनाये हुए है। बल्कि
इसका एक दूसरा प्रमुख कारण यह भी है कि वास्तविक शिक्षा के
लिए जिस प्रकार के शिक्षकों की आवश्यकता है, उस प्रकार के शिक्षक
आज हमें उपलब्ध नहीं हैं। आज के शिक्षक कैसे हैं, इसका संकेत पंत
जी ने अपनी 'किरणवीणा' में संकलित 'पुरुषोत्तम राम' शीर्षक अपनी
लम्बी और अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना की इन पंक्तियों में किया है-

“मुट्ठी भर बौद्धिक मयूर के पंख जगाए,
शिक्षा त्वच, सभ्यता चर्म ओढ़े विदेश का,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/८९

का-का-का-कर काक-बुद्धि का परिचय देते
निज भू-स्थितियों प्रति अजान भव-गति पारंगत।¹⁴⁴

उपर्युक्त पंक्तियों में निहित व्यंग्य अत्यन्त मुखर तथा पैना है। विशेष रूप से 'निज भू-स्थितियों के प्रति अजान, भव-गति पारंगत' इस चौथी पंक्ति का व्यंग्य हमारे वर्तमान शिक्षकों के ज्ञान के उस पाखण्डपूर्ण रूप को बेनकाब करता है जिसके अन्तर्गत हमारे शिक्षक दम तो यह भरते हैं कि वे सम्पूर्ण सृष्टि के विधि-विधान को अच्छी तरह जानते हैं किन्तु उन्हें अपनी ही धरती की स्थितियों का ज्ञान नहीं है।

पंत जी ने भारतीय शिक्षा-व्यवस्था का एक बहुत बड़ा दोष यह माना है कि हम विदेशी भाषा में, विदेशी भावों को, विदेशी पद्धति से अपने विद्यार्थियों को देते हैं। 'पतझर : एक भावक्रान्ति' शीर्षक अपनी रचना में वे कहते हैं-

“छायी अब आकाश-बेल अंग्रेजी भाषा-
प्राणशक्ति भू-जीवी तरु की जिसमें शोषित
मुण्ड-भक्त अब देश, धरा-चेतना पराजित,
देह अन्न से, मन विदेश की गति से पोषित।

कहाँ रहा अस्तित्व हमारा? परान्नेसेवी
पर-विचार जीवी, निज भू-आत्मा से वंचित।¹⁴⁵
यही बात प्रकारान्तर से 'लोकायतन' में भी कही है-
“आकाश-बेल अंग्रेजी छाया जन-मन-पादप पर,
जीवन-विकास क्रम जिससे कुंठित हो रहा निरन्तर।

X X X

मानसिक दासता कुण्ठित हम स्वाभिमान से विरहित,
पर-भाषा जीवी बुध जन माँगी विद्या पर गर्वित।
पर-भाव-विभव में लिपटे कहते अपने को पण्डित,
पर-कला-बोध लादे हम, दिखते बाहर से संस्कृत।

X X X

औरों के जीवन-मन को माने अपना जीवन-मन,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९०

हम लगा दूसरों का मुख ढोते रीते जीवन क्षण।¹⁴⁶

पंत जी की सांस्कृतिक चेतना अपने तात्त्विक रूप में इतनी उदार है कि वह हर सांस्कृतिक संचरण किसी देश, काल अथवा वर्ग तक सीमित न होकर विश्व-जनीन होना चाहिये। किन्तु साथ ही वे इस तथ्य को भी पूरी तरह पहचानते हैं कि सांस्कृतिक चेतना को जगाने वाली शिक्षा तभी सार्थक, उपयोगी और प्रभावशाली हो सकती है जब उसे अपनी विशिष्ट भूमि के माध्यम से प्रदान किया जाये और वह अपनी प्रण-शक्ति एवं विचार-परम्परा को आधार बनाकर चले। 'लोकायतन' की अधोलिखित पंक्तियाँ पंत जी के मनोभावों को कितनी स्पष्टता के साथ व्यक्त करती हैं-

“यदि छोड़ सकें परकीया भाषा की हम शठ ममता,
जन-भू गृहिणी वाणी की बढ़ सके, क्षेत्र या क्षमता।

वैज्ञानिक दृष्टि नहीं यह, हम हों पर-भाषा पोषित
तान्त्रिक स्वतन्त्रता पा हम अब मानस-स्तर पर शोषित।¹⁴⁷

पंत जी जहाँ बुद्धि की शिक्षा के साथ-साथ हृदय की शिक्षा को महत्व देते थे वहीं वे यह भी आवश्यक मानते थे कि शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में व्यावसायिक और व्यावहारिक दक्षता का भी विकास किया जाना चाहिये। 'किरणवीणा' में वे कहते हैं-

“शिक्षा-पद्धति निश्चय हमें बदलनी होगी,
जिस शिक्षा से सुख-सुविधा दुह सकें दक्ष कर
उसे बना कृषि, प्रविधि, अर्थ, उद्योगपरक अब
हमें राष्ट्र-रचना-हित अगणित जन, कर-पद, मन
प्रस्तुत करने होंगे नये रक्त से दीपित।¹⁴⁸

बुद्धि एवं हृदय के विकास के उन्नयन के साथ-साथ ही शिक्षा के लक्ष्य में व्यावसायिक दक्षता पर जोर देकर पंत जी ने अपने अन्तर-बाह्य विकास के समन्वय-संदेश को दोहराया है। वे कहते हैं-

“जो शिक्षा धरती के जीवन की वास्तवता से,
सम्बन्धित ही न हो, न जन-भू की संस्कृति से,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९१

जिसे प्राप्त कर युवक न अपना घर सँजो सकें

औ' न देश सेवा कर पायें-किसे लाभ

उस रिक्त ज्ञान से? जो बाह्यारोपित अनुकृति भर।'⁴⁹

पंत जी की दृष्टि में वही शिक्षा सार्थक हो सकती है जो घरती के जीवन की वस्तुस्थिति से सम्बन्धित हो और शिक्षा प्राप्त करने वाले की अपनी भूमि की संस्कृति से भी जुड़ी हुई हो, जिसे प्राप्त करने से शिक्षार्थी का अपना घर भी सँवरता हो और व्यापक जन-कल्याण की भी सिद्धि होती हो। पंत जी का ध्यान आज के विद्यार्थियों में व्याप्त असंतोष, अशिष्टता, दिग्भ्रान्ति की ओर भी गया है और वे इन विकृतियों का कारण आज की शिक्षा-पद्धति की निरर्थकता को ही मानते हैं। शिक्षा के नाम पर नवयुवकों को आजकल केवल विविध विषयों की सूचनाएँ भर दे दी जाती हैं। उनके भीतर रचनात्मकता और नव सृजन की शक्तियों को जाग्रत और विकसित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। आज का शिक्षित युवक समाज तो दूर अपनी ही सेवा के योग्य नहीं होता। पंत जी के दृष्टिकोण से शिक्षा ऐसी होनी चाहिये, जीवन-संदर्भ में जिसकी सार्थकता असंदिग्ध हो, शिक्षार्थी-चक्षुओं के सम्मुख आलोक के नवीन क्षितिज खुलें और शिक्षा की पूर्णता पर वह पूर्ण मानव बनकर जीवन के कर्म-क्षेत्र में निष्ठा और आत्मविश्वास के साथ प्रवेश करे, यही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये। किन्तु आज की शिक्षा इस लक्ष्य को पूरा नहीं कर रही है। उसकी अनुपयुक्तता तथा असमर्थता का परिचय पंत जी ने अपनी इन काव्य-पंक्तियों में दिया है-

“शिक्षा क्या, हम मात्र सूचनाएँ भर देते

विविध विषय की नवयुवकों को-रचनात्मकता

छू भी उन्हें नहीं पाती! यदि शिक्षा को हम

सच्चरित्रता का पर्याय समझते सम्प्रति

तो अपने को धोखा देते! मनुष्यत्व की

पोषक उसे मानतें हों तो-मात्र दुराशा!

वर्तमान शिक्षा युवकों में कृत्रिमता को जन्म दे रही!

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९२

सत्य जगत् से हटा उन्हें हम कृत्रिम जग में भटका देते!

शिक्षित यौवन अपनी या अपने समाज की,

सेवा के भी योग्य नहीं रह जाता।

इसीलिए नवयौवन असन्तुष्ट दिग्भ्रान्त

अतृप्त, अशिष्ट आज है।

सर्वप्रथम शिक्षा में क्रान्ति हमें लानी है।'⁵⁰

पंत जी की धारणा है-

“दिग् भ्रष्ट, प्रगति के भ्रम में रख कई पीढ़ियाँ रहन

निर्माण न कर पाये, निरूपाय धरा का यौवन।'⁵¹

इसीलिए पंत जी के मत से उस सांस्कृतिक विकास के निमित्त, जो अपनी परिणति में नवीन समन्वित सामाजिक व्यवस्था को जन्म देगा, ऐसी शिक्षा की अपेक्षा है तो नवयुवकों में रचनात्मकता और सच्चरित्रता जगा सके। जो मनुष्यत्व को पोषण प्रदान कर सके और जो उन्हें सहज और सत्यनिष्ठ बना सके।

नये युग की आकांक्षा के अनुरूप नवीन सामाजिक विकास को दिशा देने और उस दिशा में मानवीय प्रयास को अनुप्रेरित और उत्साहित करने में पंत जी कला और साहित्य की भूमिका को भी अतिशय महत्वपूर्ण मानते हैं। उनकी इसी मान्यता ने उन्हें साहित्य-सर्जना में आमरण संलग्न रहने की निरन्तर प्रेरणा दी। साहित्य की सामाजिक भूमिका की चेतना ने ही उन्हें साहित्यिक कृतित्व को वह आयाम दिया जो उनके चेतना-काव्य के रूप में संसार के सामने आया। साहित्य की सजगता और सामर्थ्य में अपनी निष्ठा को पंत जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- “आज के व्यापक, विस्तृत सामयिक परिवेश-भूमि में जो अन्तर्द्वन्द्व सम्बन्धी आशा-निराशा, निर्माण-विध्वंस, जय-पराजय, वेदना, सृजन-प्रेरणा, सन्देह, नयी आस्था, बौद्धिक तथा लक्ष्य सम्बन्धी अस्वीकृति आदि के गोरे-काले, सुनहले-विषैले, अंकुर उग रहे हैं, उनके भीतर से जीवन की प्रगति तथा सार्थकता को समझने की चेष्टा कर इस युग का साहित्य अवश्य ही एक समग्रतापूर्ण नवीन जीवन-बोध को जन्म दे

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९३

सकेगा-मुझे इसमें पूर्ण विश्वास है।' 52

6. अन्तर्राष्ट्रीय एकता की भावना के रूप में :

ईश्वर के रूप में मानव ने एक ऐसी सत्ता की कल्पना की है जो सब कुछ जानता है, देखता है। उसके पास इतनी अपरिमित शक्ति है कि वह अपनी इच्छानुसार सब कुछ करवा सकता है। उसकी शक्ति के सम्मुख मानव नतमस्तक है। ईश्वर इतना दयालु है कि वह हर किसी की सहायता के लिए तत्पर रहता है। इसीलिये संसार में दुखों, संतापों से त्राण पाने के सारे उपाय जब व्यर्थ चले जाते हैं तब मानव ईश्वर के चरणों में पहुँच जाता है। मानव उसकी असीम शक्ति, अनुपम सौंदर्य के गीत गाता है तो कभी गीतों में दुखों से मुक्ति पाने के लिये आर्त पुकार करता है यही गीत भक्ति गीत कहे जाते हैं। पंत के काव्य में भी यही भक्ति-भावना निहित है। पंत की भक्ति-भावना में अपने लिये कोई आकांक्षा नहीं है वे जो कुछ भी ईश्वर से चाहते हैं वह लोक-कल्याण, विश्व कल्याण के लिये चाहते हैं। अपने लिये चाहते हैं तो ऐसी शक्ति जिससे वह विश्व कल्याण कर सकें-

“पाकर प्रभु! तुमसे अमर दान
करते मानव का परित्राण
ला सकूँ विश्व में एक बार
फिर से नव जीवन का विहान।” 53

आज के भौतिकता सम्पन्न संसार में मानव को अपने अन्तर्जगत से जूझना आवश्यक है जिससे वह भौतिक विज्ञान की शक्ति को मानवता के विनाश का साधन न बनाकर उसे मानवता के विकास का साधन बना सके। विकसित भौतिकता से सजे संसार में मानसिक धरातल पर उन्नत मानव के होने पर ही मानवता एवं विश्व का विकास हो सकता है। दृष्टव्य है-

“आज मनुष्य को खोज निकालो
जाति वर्ण संस्कृति, समाज से
मूल व्यक्ति, को फिर से चालो।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९४

भाषा भूषा के जो भीतर
श्रेणी वर्ग से मानव ऊपर
अखिल अविनि में रिक्त मनुज को
केवल मनुज जासन अपना लो।” 54

‘युगान्त’ की पहली कविता में कवि कहता है कि संसार के जीर्ण पत्र झड़ जायें जो कुछ भी शुष्क और शीर्ण है वह भी समाप्त हो जाये यथा-

“दुत झरो जगत के शीर्ण पत्र,
हे स्वस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण!
हिमपात-पीत मधुवात-भीत,
तुम बीत राग, जड़, पुराचीन
X X X

कंकाल जाल मग में फैलें
फिर नवल रूधिर, पल्लव लाली!
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली।” 55

इस संग्रह में कवि विश्व का आह्वान करता है आगे बढ़ने की कामना उसके मन में है। वह चाहता है कि संसार में नवीनता का संचार हो, कवि ने कोकिल का आह्वान करते हुए कहा है कि वह गाकर पावक के कण की वर्षा कर दे। जो कुछ जीर्ण, पुरातन है, वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाये। जाति, वर्ण, कुल और रूढ़ियाँ, अन्धरीढ़ है। कवि इन सबके ध्वस्त होने की कामना करता है-

“गा कोकिल बरसा पावक कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन।
पावक पग धर आये नूतन,
हो पल्लवित नवल मानव पन!
X X X

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९५

गा कोकिल भर स्वर में कंपन।
झरें जाति, कुल वर्ण, पर्ण धन,
अंध-नीड़ से रूढ़ि नीति छन,
व्यक्ति राष्ट्र गत राग द्वेष रण
भरे मरें विस्मृति में तत्क्षण!''⁵⁶

विश्व में नवीनता ले आने की इच्छा पंत जी के मन में समायी हुई थी वे चाहते थे कि संसार में नव मधुर प्रभात गूँजे। नव-प्रभात हर व्यक्ति के हृदय में आशा का संचार करे। जीवन में कलरव हो जिससे सूना आकाश खिल जाये। रूढ़ियों के ध्वस्त होने और नये युग के पदार्पण की बात कवि प्रतीक के माध्यम से कहता है-

“झर पड़ता जीवन - डाली से
मैं पतझड़ का सा जीर्ण पात!
केवल, केवल जग-कानन में
लाने फिर से मधु का प्रभात।

X X X

नव मधु प्रभात! गूँजते मधुर
उर-उर में नव आश अभिलाषा
सुख सौरभ, जीवन कलरव से
भर जाता सूना महाकाश।''⁵⁷

कवि जागरण का आह्वान करता है। एक कविता में विहग को सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है कि- तुम अनादि गीत को गाओ। संसार के जनपथ और कानन में विहग का अनादि गान गूँजे। शिशिर से पीड़ित विश्व में विहग अपने स्वरों से प्राण भर दे। जिन्होंने जीवन में शीत को देखा है वे जीवन प्रभात को देखें-

“जगती के तन-पथ कानन में
तुम गाओ विहग! अनादि गान,
चिर शून्य शिशिर पीड़ित जग में
निज अमर स्वरों से भरो प्राण!

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९६

X X X

जो सोय स्वप्नों के तम में
वे जागेंगे-यह सत्य बात,
जो देख चुके, जीवन निशीथ
वे देखेंगे जीवन-प्रभात।''⁵⁸

इस कविता में पंत जी कहते हैं कि वे मानव के लिये एक नयी सृष्टि की रचना कर रहे हैं। वे अपने मानस के स्वर्गलोक को इस पृथ्वी पर उतारना चाहते हैं-

“मेरा होगा जग का स्वर,
मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानस का स्वर्गलोक
उतरेगा भू पर नई बार।

X X X

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित, भीतर
सौन्दर्य, स्नेह, उल्लास मुझे

मिल सका नहीं जग के बाहर।''⁵⁹

कवि पंत 'अतिमा' में नव प्रभात, नवचेतना, नये मूल्य, ध्यान भूमि आदि की बातें करता है। इसकी पहली कविता 'नव अरुणोदय' है। कवि कहते हैं कि मैं नित्य प्रभात का दूत रहा हूँ और विश्व में नवप्रकाश का संदेश मैंने दिया है-

“मैं प्रभात का दूत रहा नित,
नव प्रकाश संदेशवाह स्मित;
नव विकास पथ में मुड़ मैं अब
क्यों न भोर बन फिर मुस्काऊँ।''⁶⁰

नव मानवता के उदय से लोक का महत् कल्याण होगा। कवि कहता है कि विश्व मंगल के वृहत सूर्योदय में सहस्रों सूर्यो; का प्रकाश जीवन अंधकार की घाटियों को आलोकित कर रहा है। इस तरह से

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९७

कवि चाहता है कि मनुष्य अपनी बौनी मान्यताओं सुनहले पाश से मुक्त हो जाये। नव सूर्योदय होगा और प्रत्येक हृदय में स्वर्ण कमल खिलेगा-

“आज लोक कल्याण के महत् पर्व में
विश्व मंगल के वृहत् सूर्योदय में
सहस्रों सूर्यों का प्रकाश
जीवन अंधकार भी
गहनतम घाटियों को
आलोकित कर रहा है।”⁶¹

कवि चाहता है कि लोगों के अन्तर्मन के रूंधे हुये झरोखे खुल जायें। लोगों का हृदय प्रेम से भर जाये। मधुर वेदना जाग्रत हो और धरा एक बन जाये-

“अन्तर्मन के रूद्ध झरोखे
विश्व चेतना से हो दीपित,
हृदय-हृदय में मनुज प्रेम की
मधुर वेदना हो अब जागृत!
एक बने खंडित भू-प्रांगण।”⁶²

पंत का काव्य मानवीय चेतना, नवमानववाद की भावना से परिपूर्ण है जिसका लक्ष्य लोक-कल्याण और लोक संस्कृति ‘विश्वमानव’ का अभ्युत्थान है। कवि पंत मानवता के पक्षधर हैं जो भारतीय संस्कृति और वैश्विक विज्ञान की सर्वोत्कृष्ट भावना है। वे जानते हैं कि मनुष्य योनि में जन्मा व्यक्ति राग, द्वेष, हिंसा, स्पर्धा से परे रहकर अपना नीड़ नहीं बसाता है। उसमें घृणा, क्रोध, मद, स्वार्थ, लोभ, तृष्णा की भावना अन्तर्निहित रहती है। उस देश जाति से ऊपर उठकर धरती पर एकता व मानवता की भावना को स्थापित करना ही होगा जिससे लोक सभ्यता स्थापित होकर विश्व एकता स्थापित हो सके यथा-

“राग द्वेष, हिंसा स्पर्धा से कैसे
जन भू नीड़ बसा सकते भव तम हर
घृणा क्रोध मद, स्वार्थ लोभ तृष्णामय

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९८

निम्न योनि वृत्तियाँ मनुत के भीतर!
देश जाति के ऊपर उठ जन मन को
मानवता करनी धरती पर स्थापित,
मनुज प्रीति कर व्यक्ति-मुक्ति हित अर्जित
लोक साम्य रख विश्व ऐक्य के आश्रित।”⁶³

7. संस्कृति की रक्षा के प्रति उदार दृष्टि के रूप में :

सुमित्रानंदन पंत नव संस्कृति की बात करते हैं। उनके अनुसार मानवता की प्रतिष्ठा से ही नवसंस्कृति का निर्माण होता है। इसकी प्रतिष्ठा से अन्तः और बाह्य प्रकृति की प्रतिष्ठा होती है। यह संस्कृति देशकाल और परिस्थिति से ऊपर होगी-

“देश, काल औ स्थिति के ऊपर
मानवता को करो प्रतिष्ठित।

X X X

मानव, भावी मानव के हित
नव संस्कृति कर जाओ निर्मिता।”⁶⁴

नव संस्कृति में नव मानवता का नव प्रकाश होगा। कवि चाहता है कि पुरातनता के स्थान पर नूतनता प्रतिष्ठित हो। अंधकार के स्थान पर नव प्रकाश प्रतिष्ठित हो-

काटो अंधकार तन मन का
नव प्रकाश के रजत स्वर्ग से
बुनो तरुण घट नव जीवन का।⁶⁵

कवि नव संस्कृति को मूर्तिमान करना चाहता है। इससे त्याग, तपस्या और संयम के साधन सार्थक होंगे-

आज त्याग, तप, संयम साधन
सार्थक हो, पूजन आराधन।⁶⁶

इस नव संस्कृति में नारी की मुक्ति होगी। वह युग-युग के बर्बर कारागार में बंदिनी है। कवि नारी को जननी, सखि और प्रियतमा कहता है। ‘नारी’ शीर्षक कविता में वह बार-बार कहता है कि नारी

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/९९

वासना का माध्यम नहीं है। उसकी मेखला खोल देनी चाहिए-

“मुक्त करो नारी को मानव!

चिर वंदिनी नारी को,

युग-युग की बर्बर कारा से,

जननि, सखी, प्यारी को।”⁶⁷

नव संस्कृति को प्रतिष्ठित करने के लिए आवश्यक है कि प्राचीन नित्य झड़ता रहे और नूतनता का पल्लवन हो- ‘झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन’।

पंत अपने काव्य में भारत की गौरवशाली परंपरा, संस्कृति आदि का गौरव गान करते हैं। उदाहरणार्थ-

“यह विराट् रे देश

विशाल जहाँ जन समुदाय,

यहाँ हुआ था प्रथम

सभ्यता का स्वर्णोदय,

यहिं आत्म उन्मेष हुआ

मानव का निश्चय।”⁶⁸

पंत का विचार है कि लोक कलाओं और लोक नृत्यों के रूप में आज भी भारत की गौरवमयी संस्कृति को ग्रामीण लोगों ने जीवित रखा है। लोक-कलाओं, नृत्यों तथा व्रत त्यौहारों से गाँवों का जीवन स्पर्दित रहता है पंत की सूक्ष्म अन्वेषक दृष्टि लोकनृत्यों के द्वारा ग्रामीणों को अत्याचारों का प्रतिवाद करते भी देख लेती है। पंत जी की सांस्कृतिक चेतना अपने तात्त्विक रूप में इतनी उदार है कि वह हर सांस्कृतिक संचरण को सम्पूर्ण विश्व से जोड़ना चाहती है। उनका मानना है कि नवीन सांस्कृतिक संचरण किसी देश, काल अथवा वर्ग तक सीमित न होकर विश्व-जनीन होना चाहिये। किन्तु साथ ही वे इस तथ्य को भी पूरी तरह पहचानते हैं कि सांस्कृतिक चेतना को जगाने वाली शिक्षा तभी सार्थक, उपयोगी और प्रभावशाली हो सकती है जब उसे अपनी विशिष्ट भूमि के माध्यम से प्रदान किया जाये और वह

अपनी प्राण-शक्ति एवं विचार परंपरा को आधार बनाकर चले। ‘लोकायतन’ की अधोलिखित पंक्तियाँ पंत जी के मनोभावों को कितनी स्पष्टता के साथ व्यक्त करती हैं-

“यदि छोड़ सके परकीया भाषा की शठ ममता,

तन-भू गृहणी वाणी की बड़ सके क्षेत्र या क्षमता।

वैज्ञानिक दृष्टि नहीं यह हम हो पर भाषा पोषित,

तांत्रिक स्वतंत्रता पा हम अब मानस स्तर पर शोषित।”⁶⁹

भारतवर्ष की मध्ययुगीन सांस्कृतिक दृष्टि का परिचय देते हुए पंत जी कहते हैं- “देश की पराधीनता और हास के युग में संस्कृति के संरक्षण के लिए प्रयत्न शुरू हुए। अन्य संस्कृतियों से ग्रहण कर सकने की उसकी प्राणशक्ति मन्द पड़ गयी और भारतीय संस्कृति का गतिशील जीवन-द्रव जातियों, सम्प्रदायों, संघों, मतों, रूढ़ि-रीति-नीतियों और परंपरागत विश्वासों के रूप में जमकर कठोर एवं निर्जीव हो गया। आर्थिक और राजनीतिक पराभव के कारण, जन साधारण में देह की अनित्यता, जीवन का मिथ्यापन, संसार की असारता, मायावाद, प्रारब्धवाद, वैराग्यभावना आदि हासयुग के अभाषात्मक विचारों और आदर्शों का प्रचार बढ़ने लगा।”⁷⁰

मध्यकाल की सांस्कृतिक स्थिति का परिचय पंत जी ने अपने ‘लोकायतन’ नामक विशद काव्य में इस प्रकार दिया है-

“कहते वे धिक् मध्ययुगी मन को

जिसने भू को दी विरक्ति, वर्जन,

दिया पारलौकिक का आकर्षण,

कर्म-प्रेरणा से वंचित कर जन।

बाँध कर्म-फल-क्रम में तहवन को

पूर्व जन्म की रच निर्मम श्रृंखल,

अजगर बना नियति बिल का निष्क्रिय

पाप-पुण्य भय दिखा, किया निर्बल।

धिक् जग-जीवन को मिथ्या बतला

रिक्त मुक्ति हित भेजा गृह को वन!
घोर दरिद्र, कुरूप बना भू को,
झूठी आस्था दी झूठे साधन,
पक्षघत ग्रसित पा भू-जन का
भर आते करुण-जल से लोचन
रूधिर उबला हृदय शिराओं में
प्रेम-सृष्टि को देख नरक प्रांगण।'71

उन्होंने मानव को सचेत किया कि-

“आत्मिक सित संपद, चरित्र बल प्रति प्रबुद्ध रह!
अन्तर्वैभव ही वैभाव वरणीय मनुज हित।
रिक्त त्याग के मरू मृग अंधतमस् में गिरते-
जीवन का जो तिरस्कार, मैं भू-जीवन प्रिया।'72

धरती के जीवन को महत्व देना आधुनिक युग-दृष्टि का एक सामान्य लक्षण है। इस आधुनिक जीवन-दृष्टि को पंत जी ने न केवल आग्रह के साथ ग्रहण किया, बल्कि उसे नवीन परिष्कार भी दिया है।

पंत का कहना है- “हमें सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति सबसे अधिक चैतन्य रहना चाहिये। संस्कृति मानव चेतना का सार पदार्थ है। संस्कृति में हमारी धार्मिक, नैतिक तथा रहस्यात्मक अनुभूतियों का ही सार-भाग नहीं रहता, उसमें हमारे सामाजिक जीवन में बरते जाने वाले आचार-विचार एवं व्यवहारों के भी सौन्दर्य का समावेश रहता है।'73

8. सामाजिक चिंतन के प्रति उदार दृष्टि के रूप में :

सामाजिक जागरूकता पंत जी के जन्मजात स्वभाव का अंग थी। अपनी बाल्यावस्था के बीतते-न-बीतते वे व्यापक जीवन की समस्याओं के प्रति जागरूक हो गये थे। सामाजिक जीवन की सीमाओं से क्षुब्ध होकर उन्होंने युगान्त, युगवाणी तथा ग्राम्या में पुरानी दुनिया की अंध-रूढ़ि, रीति परम्पराओं तथा वैज्ञानिक युग से पहले की संकीर्ण, आर्थिक, राजनीतिक प्रणालियों तथा सामाजिक परिस्थितियों में पथराई हुई बाह्य जीवन की चेतना पर निर्मम आघात किये। उन्होंने

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०२

समाज की प्रत्येक धड़कन, प्रत्येक स्पन्दन तथा प्रत्येक विकास को देखा, सुना तथा महसूस किया।

अपने युग के आर्थिक-वैषम्य का चित्रण भी पंत जी ने अपनी रचनाओं में प्रचुरता और प्रभावपूर्णता के साथ किया है। समाज में कुछ लोग आवश्यकता से अधिक धनाढ्य हैं तो बहुसंख्यक जन सर्वथा निर्धन हैं। आर्थिक विषमता की इस समस्या का संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है-

“राजाओं से रहते मंत्री क्षुधित-धरा के,
उच्च पदस्थों के ऊँचे नभचुम्बी वेतन,
सुरा नालियों में बहती सम्पद नगरों की
मध्य वर्ग पिस रहा शासकों के कर-पद बन,
शेष प्रजाजन अन्न वस्त्र गृह से भी वंचित
भाग्य भरोसे बैठे कोसा करते विधि को,
आज घास की रोटी भी न सुलभ जनता को।'74

‘गीत-अगीत’ में एक पढ़े-लिखे किन्तु बेकार नवयुवक का प्रस्तुत चित्र समाज पर एक करारा व्यंग्य है-

“सुनता, आराम हराम!
शहर-भर में भटका
मिला नहीं काम,
जो हैं बड़े नाम
गया उनके पास
X X X
कहा, मुझे काम की तलाश।
घुड़के, काम किसके पास?
कैसे मिले काम?
किसके पास छदाम?
X X X
काम के लिए चाहिये पुल, सोर्स,
शादी के लिए कुल रूपये का फोर्स,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०३

दोनों नहीं पास, मन मारे
बैठे रहे निराश।'75

'गीत-अगीत' के ही एक अन्य गीत में मध्यमवर्ग के परिवार का यथातथ्य चित्र खींचा गया है-

“न आया आयी हरजाई! न महरी आई बहरी!
बरतन गन्दे पड़े, रसोई में छिलके सड़े।

X X X

उन्हें दफ्तर जाना, जल्दी खाना बनाना!
नल में बूँद पानी नहीं, उन्हें अभी नहाना!

हज़ार काम, किसे है आराम

X X X

लो, बैठक में दोस्त आ गये,

यम के दूत छा गये।

उन्हें चाय पिलाओ, और नाश्ता खिलाओ!

X X X

उस पर ढेर सारे बच्चे,

इससे निःसन्तान ही अच्छे,

अह, मध्य वित्त का जीवन,

जीवन नहीं, मरण!

मृत्यु ही शरण।'76

पंत जी की युग दृष्टि ने देखा कि पुरानी वर्ण-व्यवस्था का वैषम्य तो अपनी जगह पर है ही, नवीन परिस्थितियों ने एक नये प्रकार के वर्ण-भेद को जन्म दे दिया है। पंत दीन-दलित वर्ग की प्रारंभिक स्थिति एवं आज की स्थिति का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं।

“नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित
जीवन यापन कर न सके सब इच्छित
नैतिक सीमाएँ बहु कर निर्धारित
जीवन इच्छा की जन ने मर्यादित।'77

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०४

पंत के विचार से वैदिक काल में जीवन यापन की सुविधा जुटाने हेतु मानव जाति का वर्ग विभाजन किया गया था, जिससे मनुष्य अपने सामर्थ्यानुसार इच्छित कार्य कर सके, किन्तु कालान्तर में स्वार्थ परता तथा शक्ति-हीनों का शोषण करने के लिये सभ्य समाज की नैतिक सीमाओं का अंकन कर, मानव की इच्छाओं को मर्यादित कर दिया है। सभ्य समाज भूल गया है कि दीन दलित भी उनके समान मनुष्य ही हैं। मानवतावादी पंत की सौंदर्य दृष्टि कुरूपता में भी सौन्दर्य की खोज कर लेती है। पासी के कचरा बीनते नंग-धड़ंग बच्चे भी उन्हें आकर्षित करने लगते हैं। देखिये-

“मेरे आंगन में (टीले पर है मेरा घर)

दो छोटे से लड़के आ जाते जब तब

नंगे बदन, गदबदे, साँवले, सहज, छबीले,

मिट्टी के मटमैले पुतले-पर फुर्तीले।

जल्दी से टीले के नीचे, उतर उतरकर

बे चुन ले जाते कूड़े से निधियाँ सुन्दर-

सुन्दर लगती नग्न देह मोहती नयन-मन

मानव के नाते उर में भरता अपनापन।'78

पंत को दुख है कि मानव के सभ्य कहाने वाले वर्ग ने मानव होकर भी मानवों की दुर्दशा करने में कोई कमी नहीं की है-

“शव को दें हम रूप, रंग आदर मानव का?

मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का।'79

'ताज' रचना की उपर्युक्त पंक्तियाँ उस मानव समाज के प्रति पंत का रोष व्यक्त करती हैं जिसने निर्जीवों की पूजा की है और जीवितों को शव सा रहने को विवश किया है। पंत का गांधी जी से प्रभावित होने का एक कारण यह भी था कि गांधी जी ने दीन दलितों को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने का महत् कार्य किया था। पंत गांधी जी को धन्यवाद देते हैं-

“सदियों का दैन्य तमिस्र तूम, धुन तुमने, कात प्रकाश सूत,

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०५

हे नग्न । नग्न पशुता ढक दी बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत।
जन पीड़ित छूतों से प्रभूत, छू अमृतस्पर्श से हे अछूत
तुमने पावन कर, मुक्त किये मृत संस्कृतियों के विकृत
भूत।⁸⁰

पंत का विश्वास है कि अब युग परिवर्तित हो रहा है प्रत्येक
मनुष्य अब जागरूक हो रहा है-

“युग-युग से रच शत शत नैतिक बंधन
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु तन
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित
वह न रहेगा अब नव युग में गर्हित
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न
रीति-नीतियों का गत निर्मम शासन।⁸¹

पंत के मत में दलित वर्ग भी अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक
हो गया है। सदियों से अपने ऊपर थोपे गये नैतिक बंधन तथा अपने
प्रति किये गये पशु सम व्यवहार को समझ गया है। अब वह उसे सहन
नहीं करेगा वह उससे मुक्त होकर ही रहेगा। पंत स्वयं भी दीन दलितों
की सहायता के लिये उद्यत दिखाई देते हैं। दृष्टव्य है-

“जो दीन हीन, पीड़ित, निर्बल,
मैं हूँ उनका जीवन संबल
जो मोह छिन्न, जग में विभक्त,
वे मुझसे मिलें बनें सशक्त।⁸²

निष्कर्ष रूप में, कहा जा सकता है कि पंत मानवता के विकास
में बाधा बनने वाले किसी भी रीति-रिवाज, व्यवस्था को हटाने के
पक्षधर हैं।

सन्दर्भ

1. सुमित्रानंदन पंत- कवि और काव्य : शारदा लाल, पृ० 43
2. सुमित्रानंदन पंत- कवि और काव्य : शारदा लाल, पृ० 43

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०६

3. युगवाणी : सुमित्रानंदन पंत, पृ० 14
4. वही, पृ० 24
5. 'गीत विहग' (उत्तरा), पंत ग्रंथावली, भाग-3, पृ० 28
6. शांति और क्रान्ति (अतिमा), पंत ग्रंथावली, भाग-3, पृ० 372
7. 14वीं रचना (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 14
8. नौका विहार (गुंजन), पंत ग्रंथावली, भाग-1, पृ० 274
9. भारत गीत (युगांतर), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 36
10. लोकायतन, पंत, पृ० 51
11. भारत गीत (युगांतर), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 36
12. कविता क्रमांक 8 (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 11
13. उद्बोधन (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 41
14. कविता क्रमांक 60 (वीणा), पंत ग्रंथावली, भाग-1, पृ० 115
15. आत्मिका (वाणी), पंत ग्रंथावली, भाग-4, पृ० 182
16. मैं और मेरा परिवेश (निबंध) पंत ग्रंथावली, भाग-6, पृ० 184
17. मानव (युगपथ) पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 22
18. वही, पृ० 249
19. मानववादी विचारभूमि (निबंध), पंत ग्रंथावली, भाग-6, पृ० 406
20. कविता क्रम संख्या 3 (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 8
21. युगवाणी- जीवन मांस कविता, पृ० 35
22. युगवाणी- दो लड़के कविता, पृ० 23
23. गुंजन एक तारा कविता, पंत ग्रंथावली, पृ० 208
24. सौवर्ण, पंत ग्रंथावली, भाग-3, पृ० 306
25. लोकायतन, मध्य बिंदु, सुमित्रानंदन पंत, पृ० 228
26. शांति और क्रान्ति (अतिमा), पंत ग्रंथावली, भाग-3, पृ० 372
27. 14वीं रचना (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ० 14
28. कविता क्रम 11 पंत ग्रंथावली, भाग-1, पृ० 87
29. संध्या (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-1, पृ० 41
30. कविता क्रम 11 (वीणा), पंत ग्रंथावली, भाग-1, पृ० 86

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०७

31. मजदूरनी के प्रति, पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 167
32. 'गीत-अगीत', पंत ग्रंथावली, भाग-7, पृ0 513
33. युगवाणी - नारी कविता, पृ0 36
34. ग्राम्या- नारी, पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 167
35. लोकायतन : ग्राम शिविर, सुमित्रानंदन पंत, पृ0 46
36. वही, पृ0 46
37. वही, पृ0 48
38. वही, पृ0 48-49
39. वही
40. वही, अन्तर्विरोध, पृ0 341
41. वही, उत्क्रान्ति, पृ0 385-86
42. ज्योत्स्ना, सुमित्रानंदन पंत, पृ0 69-70
43. वही, पृ0 75
44. किरणवीणा, पुरुषोत्तम राम, पृ0 213
45. पतझर : एक भावक्रान्ति, पंत ग्रंथावली, भाग-4, पृ0 435-436
46. लोकायतन, पंत ग्रंथावली, भाग-5, पृ0 92-93
47. किरणवीणा, पुरुषोत्तम राम, पृ0 222
48. वही, पृ0 221
49. वही, पृ0 222
50. आस्था गीत, पंत ग्रंथावली, खण्ड 7, पृ0 284
51. लोकायतन, पंत ग्रंथावली, भाग-5, पृ0 93
52. साहित्य : समसामयिक संदर्भ में, पंत ग्रंथावली, पृ0 395
53. युगपथ, पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 14
54. 'खोज' (युगवाणी), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 119
55. युगान्त, सुमित्रानंदन पंत, पृ0 11
56. वही, पृ0 12
57. वही, पृ0 14
58. वही, पृ0 19

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०८

59. वही, पृ0 35
60. वही, पंत ग्रंथावली, भाग-4, पृ0 354
61. सुमित्रानंदन पंत, पंत ग्रंथावली, भाग-4, पृ0 268
62. वही, पंत ग्रंथावली, भाग-7, पृ0 452
63. लोकायतन, सु.न. पंत, पृ0 31
64. युगवाणी, सु.न.पंत, पृ0 36
65. वही, पृ0 104
66. वही, पृ0 105
67. वही, पृ0 58
68. स्वतन्त्रता दिवस (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 38
69. लोकायतन, पंत ग्रंथावली, भाग-5, पृ0 93
70. आधुनिक कविता, पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 273
71. लोकायतन, पंत ग्रंथावली, भाग-5, पृ0 321-322
72. किरणवीणा-पुरुषोत्तम राम, पृ0 209
73. कला और संस्कृति, पंत ग्रंथावली, भाग-6, पृ0 418
74. किरणवीणा, पुरुषोत्तम राम, पृ0 212
75. गीत-अगीत, पंत ग्रंथावली, भाग-7, पृ0 515
76. वही, पृ0 516
77. (युगवाणी) मानव पशु, पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 99
78. दो लड़के, युगवाणी, पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 87
79. ताज (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 21
80. बापू के प्रति (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 24
81. कविता क्रम 15 (युगपथ), पंत ग्रंथावली, भाग-2, पृ0 14
82. वही, पृ0 15

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१०९

पंचम अध्याय

पंत के काव्य में प्रकृतिवाद

समुद्र तल से साढ़े सात हजार फीट ऊपर तथा अल्मोड़ा से 53 किमी० दूर कौसानी उत्तरी पर्वतीय प्रदेश की अत्यन्त सुन्दर उपत्यका है। रंग-विरंगे वनफूलों से सुसज्जित और पक्षियों से पूर्ण तथा लम्बे-लम्बे चीड़, औक और देवदारु के वृक्षों से ढके पर्वतगात्र प्रकृति-सुषमा में कौसानी को अनुपम बनाते हैं। इसी रम्य सौन्दर्य स्थली में प्रकृति के चिरप्रेमी कवि पंत का जन्म प्रातः आठ-नौ बजे के मध्य 20 मई सन् 1900 ई० को हुआ, जब उन्नीसवीं सदी के समाप्त होने में केवल सात माह शेष थे—

घरती पर शिशु ने पहिले आंखें खोलीं।

नव प्रभात बेला की, नव जीवन अरुणोदय,
विगत शती थी मुक्तप्राय, युगसन्धि का समय।

पंत का जन्म और माता सरस्वती देवी की मृत्यु, ये दोनों घटनायें साथ-साथ घटित हुईं—

जन्म मरण आये थे संग-संग बन हमजोली,

मृत्यु अंक में जीवन ने जब आँखें खोलीं।

माँ के इस अभाव की पूर्ति प्रकृति ने की। वही उनकी माता, पिता, भाई, सखा, शिक्षक, प्रेयसी— सभी कुछ बन गयी— “जैसे माँ बच्चे को अपनाती है, वैसा प्रकृति ने मुझे अपनाया है। उसने मेरे चंचल मन की आकुल-व्याकुलता को, जिसे मैं किसी पर प्रकट नहीं कर सका हूँ, अपने में ले लिया।— उसकी एकान्त कोड़ में बैठकर मैं अपने को सबसे बड़ा अनुभव करता हूँ, जो अनुभूति मुझे और किसी के सम्मुख नहीं हुई है।”^१

प्रकृति का इतना निकट साहचर्य उन्हें प्राप्त हुआ, इस तथ्य की पुष्टि उनकी रचनाओं द्वारा होती है। “कौसानी की गोद

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११०

मुझे माँ की गोद से अधिक प्यारी रही है।”^२

माँ से बढ़कर रही घात्रि,

तू बचपन में मेरे हित।

घात्रि कथा रूपक भरः

तूने किया जनक बन पोषण

मातृहीन बालक के सिर पर

वरद हस्त धर गोपन।^३

मातृ-स्नेह से वंचित इस भावुक कवि के काव्य में माँ की पुनीत स्मृति बिखरी हुई मिलती है। ‘वीणा’ की अन्तिम पंक्तियाँ हैं—

जीवन भर भी माँ!

मैं पूरे गा नः सकूँगा तेरे गीत,

अपनी वाणी में स्वर भर।^४

‘ग्रन्थि’ में इस अभाव का वर्णन इस प्रकार है—

निर्यात ने ही निज कुटिल कर से,

सुखद गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,

बाल में ही हो गई थी लुप्त हा।

मातृ अंचल की अभय-छाया मुझे।^५

इस प्रकार प्रकृति ने उसे पूर्णरूपेण अपना लिया था और कौसानी का प्राकृतिक सुषमा से पूर्ण प्रांगण ही बालक पंत का वास्तविक घर था। अपनी ‘आत्मिका’ नामक कविता में उन्होंने कौसानी का चित्र इस प्रकार अंकित किया है—

आरोही हिमगिरि चरणों पर

रहा ग्राम वह मरकत मणिकण,

श्रद्धानत, आरोहण के प्रति

मुग्ध प्रकृति का आत्मसमर्पण।^६

पंत का बचपन यहाँ हिमाद्रि की स्वच्छ, शुभ्र छाया में विकसित हरी-भरी घाटी में बीता। उनका बालक मन निर्गम्य होकर

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१११

इस सुरभित, मनमोहक वातावरण में विचरण करता—

छुटपन में विचरा हूँ मैं
इन धूप छाँह शिखरों पर,
दूर क्षितिज पर हिल्लोलित—सी
दृश्यपटी पर निःस्वर
हल्की गहरी छायाओं के
रेखांकित से पर्वत
नील बैंगनी, रक्त, पीत,
हरिताम वर्ण श्री छहरा
मोहित अन्तर में भर देते
आदिम विस्मय गहरा,
अन्तरिक्ष विस्फारित नयनोंम को
अपलक रख तद्वत्।¹

प्रकृति का यह रहस्यमय सौन्दर्य पंत के किशोर मन को भावमुग्ध कर देता और उन्हें अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती। “यह आत्मविस्मरण ही प्राकृतिक सौन्दर्य का बोध या नैसर्गिक आनन्द था। यही एक मात्र सत्य था जिसका वे घण्टों निर्निमेष पान किया करते। अपने को तथा अपने मातृहीन बचपन, घर—द्वार, क्षुधा—तृष्णा सभी को वे भूल जाते, सभी से दूर, बहुत दूर उनका मन वहाँ विचरण करने लगता, जहाँ मात्र अदृश्य, अज्ञात सत्ता का रहस्यमय सौन्दर्य प्राणों को आह्लादित कर देता। दिनों तक यह सुखद अनुभव उन्हें आत्म—विभोर रखता।”¹⁰

स्वयं पंत का कथन है—“मेरे प्रबुद्ध होने से पहले ही, प्राकृतिक सौन्दर्य की रहस्यमयी अनेकानेक मोहक तहें, अनजाने ही एक के ऊपर एक, अपने अनन्त वैचित्र्य में मेरे भीतर जैसे जमती गयीं।”¹¹ प्रकृति साहचर्य ने पंत को इतना अधिक प्रभावित किया कि आज हिंदी साहित्य में वे प्रकृति और सौन्दर्य के अद्वितीय कवि माने जाते हैं। प्रकृति ने ही उन्हें आत्म—तुष्टि प्रदान की, जो सदैव

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११२

के लिये उनका आत्म—सम्बल बना और इसके फलस्वरूप वे सहज भाव से असह्य पीड़ा और दारुण दुःख के क्षणों को झेल गये, उनका अन्तर भंग नहीं होने पाया।

वंश की दृष्टि से ‘पंत—वंश’ अपने शौर्य और साहित्यिक प्रतिभा के लिये प्रसिद्ध रहा है। इस कुल में बड़े—बड़े शास्त्रज्ञ, विद्वान, सेनाध्यक्ष, ज्योतिषी, वैद्य तथा कवि हुए हैं। उन्नीसवीं शती के ‘गुमानी पंत’ कुमाऊँ के प्रख्यात कवियों में माने जाते हैं, जिन्होंने संस्कृत, हिंदी और पहाड़ी भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें से अब भी कुछ उपलब्ध हैं। वंशावली के अनुसार कूर्माचलीय ब्राह्मण विशेषतः पंत और जोशी महाराष्ट्र से पन्द्रहवीं शती में कूर्माचल आये थे।

पंत ऋग्वेदीय चितपावन ब्राह्मण हैं, इनके पूर्वज श्री पुरुषोत्तम एवं पुरुष (पुरु) पंत अपनी वीरता के लिये सुप्रसिद्ध रहें हैं। पंत के दादा श्री मदननारायण माफीदार थे। उनके पास साठ गाँव थे। वे संस्कृत के विद्वान कवि थे। अपनी विद्वता के बारे में उन्हें गर्व भी था।¹² पंत के पिता श्री गंगादत्त जी को भी संस्कृत और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। कौसानी की ‘टी इस्टेट’ के वे उपप्रबन्धक थे और साथ ही, मकान बनाने की लकड़ी का उनका अपना व्यापार भी था। इससे उन्होंने प्रचुर धन अर्जित किया और अल्मोड़ा में उनका साठ कमरों का निजी मकान भी था। कौसानी में वे सरकारी बंगले में रहते थे।

पंत अपने माता—पिता की आठवीं और अंतिम संतान थे। उनके तीन बड़े भाई हरदत्त, रघुवरदत्त और देवीदत्त तथा चार बहनें बसन्ती, माधवी, रुक्मिणी और गौरी थीं। “बालक पंत की शारीरिक अथवा भौतिक आवश्यकताओं का स्नेह संरक्षण उनके पिता, फूफी और बूढ़े नौकर बिस्ना ने किया, तो उनके मानसिक, भाविक, बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन का संरक्षण प्रकृति ने स्वयं किया है।”¹³ यही कारण है कि दृढ़ आत्मबल, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और सर्वप्रथम

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११३

काव्य प्रेरणा भी उन्हें प्रकृति से ही मिली। जगत को सत्य मानते हुए उनके मन में ऊर्ध्व दृष्टि के प्रति अटूट आस्था है। उनका ऐसा विश्वास है कि यदि मनुष्य हिमालय की भांति ऊर्ध्वाकांक्षी हो तो इस जगत को ही सौन्दर्य और शिवत्व से युक्त कर पृथ्वी पर स्वर्ग उतार सकता है। उनके समस्त कृतित्व का सार भी यही है।

बाल्यकाल में पंत पर सबसे अधिक प्रभाव उनके प्रशान्त, उदार, कर्मठ और धर्मप्राण पिता के व्यक्तित्व का पड़ा, जो आज भी उनके आदर्श हैं। उन्होंने सदैव ही अपने पिता की भांति आत्मस्थ, स्वाभिमानी, निर्भीक, निष्कल और सहृदय बनने का प्रयत्न किया। वे अपने निष्कलुष, उदार व्यक्तित्व के कारण जीवित हिम-शिखर से लगते थे। हिम-शिखर से तुलना शायद इसीलिये की हो कि अनजाने ही हिमाद्रि उनका शिक्षक रहा है—

सोच रहा किसके गौरव से
मेरा यह अन्तर जग निर्मित
लगता तब, हे प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित।¹⁴

पिता के अतिरिक्त उन पर उनके बड़े भाई श्री हरदत्त पंत का भी विशेष प्रभाव पड़ा। वे अत्यंत उच्च साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे। अंग्रेजी और संस्कृत का उन्हें अच्छा ज्ञान था, तथा संस्कृत के वृत्तों में उनकी कुमाऊनी कवितायें प्रकाशित भी होती थीं। वे बहुधा अपने मुग्ध कंठ से 'मेघदूत' तथा 'शकुन्तला' के छन्द अपनी नव वधू को गाकर सुनाया करते थे। तब न समझने पर भी यह गायन पंत को बड़ा कर्णप्रिय लगता था। उनके पिता के पास आने वाले अनेक उच्च कोटि के साधु-सन्तों का भी गम्भीर प्रभाव उन पर पड़ा। एक बार तो वे एक सुन्दर साधु के रूप, स्वभाव और भाषणों से आकर्षित हो, उसके साथ जाने के लिये तैयार हो गये थे, परन्तु उनके बड़े भाई ने ऐसा नहीं होने दिया।

पंत के नाम का प्रसंग काफी रोचक है। मातृविहीन शिशु पंत

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११४

की दीर्घायु की मनौती मानते हुए उनके वात्सल्य-विमूढ़ पिता ने उन्हें एक गोस्वामी हरगिरी बाबा जी को सौंप दिया, जिन्होंने इनका नामकरण गोसाईदत्त करते हुए रक्षा हेतु उनके गले में रुद्राक्ष बांध दिया। आज भी कुछ लोग उन्हें गोसाईदत्त, गुसै अथवा सै कहते हैं। बाद में उन्हें यह नाम अप्रिय लगने लगा और गवर्नमेण्ट 'हाईस्कूल अल्मोड़ा' में चौथी कक्षा में नाम लिखवाने के लिये जब उन्हें 'कौसानी वर्नाक्यूलर' का सर्टिफिकेट मिला और उन्होंने उसकी ओर वहाँ ध्यान दिया, तो उन्हें अपने नाम परिवर्तन की तत्काल आवश्यकता प्रतीत हुई। उनके निर्भय, दृढ़, संकल्पयुक्त स्वभाव ने किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं समझी। उसी समय सर्टिफिकेट पर लिखे नाम को चाकू से खुरचकर उसके स्थान पर 'सुमित्रानन्दन' लिख दिया।¹⁵

सुमित्रानन्दन अर्थात् लक्ष्मण उनके आदर्श पात्र रहे हैं। 'लक्ष्मण के प्रति' रचना में वे उन्हें 'मेरे मन के मानव लक्ष्मण' कहते हैं। इस नाम-परिवर्तन का एक अन्य कारण स्पष्ट करते हुए बच्चन जी लिखते हैं—“गत वर्ष उनके (पंत के) बड़े भाई श्री हरदत्त पंत मेरे मेहमान थे। उन्होंने बताया कि पंत जी का दिया हुआ नाम था गौसाईदत्त पंत। श्री हरदत्त पंत के कोई बिहारी मित्र थे सुमित्रानन्दन सहाय, उनके पत्र अक्सर आया करते थे, बस गौसाईदत्त जी को यह नाम पसंद आ गया और उन्होंने अपने को सुमित्रानन्दन पंत कहना शुरू किया।”¹⁶ उन्होंने 'सरस्वतीनन्दन' भी बनना चाहा, पर इस नाम में शायद उन्हें अहमन्यता की गन्ध-सी आयी और उन्होंने यह विचार छोड़ दिया।¹⁷

इसके अतिरिक्त पंत ने सम्भवतः सन् 1916 से 1919 तक की अनेक रचनायें 'श्री नन्दिनी' छद्म नाम से की हैं। इस नाम को ग्रहण करने का कारण बताते हुए वे कहते हैं कि—“नन्दिनी दिलीप की गाय का नाम था, जो उन्हें किसी कारणवश बहुत भला लगा। उन्होंने उपनाम के रूप में इसे अपनाया, परन्तु बाद में स्त्रैण

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११५

जानकर इसे छोड़ दिया।¹⁸ श्री नन्दिनी के अतिरिक्त सन् 1918 तक पंत की रचनायें 'नंदन जी पंत', 'एक निहत्था', 'सुधाकरप्रिय', 'किशोर', 'रावणार्जुन', 'कृतज्ञ', 'मोती', 'नन्दन जी', 'नयन', 'सुमित्रानन्दन' आदि इन अनेक नामों से 'शक्ति', 'अल्मोड़ा अखबार', 'सुधाकर', 'मर्यादा', 'हिमालय' में छपीं।¹⁹ जो भी हो, उनका समस्त व्यक्तित्व गौसाईदत्त में लिपटा रहा, जो उनके सौम्य निःसंग स्वभाव का प्रतीक है।

पाँच वर्ष की अवस्था में पंत का विद्यारम्भ संस्कार बड़ी धूमधाम से हुआ। संस्कार के पश्चात् उनके फूफा जी ही उन्हें अधिकतर पढ़ाया करते। जब उनका मन पढ़ने में लगता, मिठाई और पैसे आदि का प्रलोभन भी देते।

"इसी साल सन् 1905 में गाँव की पाठशाला, 'कौसानी वर्नाक्यूलर स्कूल' की 'ब' कक्षा में पंत का नाम लिखवा दिया गया।"²⁰ पंत को सर्वप्रथम कॉपी में 1907 लिखने की याद है और याद है अपने मधुर छन्द पाठ की, जिसके लिये स्कूल के इंस्पेक्टर ने एक पुस्तक पुरस्कार स्वरूप दी थी।²¹ इस पाठशाला में उनके फूफेरे भीई अध्यापक थे और उन्हें गोद में उठाकर पाठशाला ले जाया करते थे, परन्तु स्कूली शिक्षा का महत्व उनके जीवन में उतना नहीं रहा, जितना कौसानी की प्रकृति का। बच्चों के विकास और शिक्षा के लिये वे प्रकृति को अनिवार्य शिक्षक मानते हैं। एक बार आकाशवाणी वार्ता में उन्होंने कहा—“बचपन में मुझे पुस्तकों से कहीं अधिक कौसानी की हँसमुख चंचल हरियाली और स्वच्छ नील आसमान ने सिखाया है। मेरे मन में उसने अपनी स्वच्छता और सुन्दरता की अमिट छाप लगा दी है। मैं बराबर सोचा करता हूँ कि बच्चों को प्रकृति के खुले आंगन में अपना अधिक समय बिताना चाहिये।”²² उनका शिक्षारम्भ उनके कवि व्यक्तित्व के प्रस्फुटन और विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियों में हुआ, परन्तु फिर भी पुस्तकों में उनका मन अधिक नहीं रमता था—

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११६

कौसानी की ग्राम पाठशाला में मेरा शिक्षारम्भ हुआ, वे कैसे मधुर वर्ष थे।
पाठों से थी कहीं अधिक रुचि गिरि स्रोतों के
फेनिल कलरव में, वन क्षितिजों के मुकुलों में,
डचक चौकड़ी भरते भूरे गिरि हिरनों में,
गुल्म झाड़ियों बीच फुदकते शिशु खरहों में।²³

नौ वर्ष के होते-होते पंत को अमरकोश, मेघदूत, रामरक्षास्तोत, चाणक्यनीति आदि के अनेक श्लोकों का ज्ञान हो गया था। संस्कृत का ज्ञान फूफा जी ने करवाया और श्री अम्बादत्त जोशी ने उन्हें पर्शियन पढ़ाई, जो कि बाद में वे बिल्कुल भूल गये थे। अंग्रेजी उनके पिता जी पढ़ाते थे, क्योंकि स्कूल में अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती थी। इसी समय घर पर ही उन्हें संगीत का अभ्यास भी करवाया जाता और वे भैरवी, पीलू, काफी, खमाज, केदारा, कल्याण, देस, विहाग आदि रागों को जान गये। स्कूल के लड़कों अथवा भाइयों के साथ खेल में वे बहुत कम सम्मिलित होते। उनका बचपन अधिकांशतः घर आँगन में ही बीता। “एक जन्मजात अन्तर्दृष्टि के कारण बचपन से ही पंत को अपने स्वभाव के साथ अज्ञात भाव से सदैव उलझना पड़ा और इसी ने उनके बचपन को गम्भीर, यौवन को संयामित तथा प्रौढ़ावस्था को शान्त एवं भागवतचेतनामय बनाया है।”²⁴

कवि रूप में उन्होंने हिमाद्रि से आदर्श ग्रहण किया और हरी-भरी उपत्यकाओं से सौन्दर्य-दृष्टि। सुन्दर निसर्ग ने अनजाने ही अपने स्पर्श से उनके हृदय को झंकृत कर दिया, जिससे उनका अन्तर्जात कवि प्रस्फुटित हो गया। लिखना उन्होंने लगभग छः सात साल की वय से प्रारम्भ कर दिया था और कविता करने की प्रेरणा उन्हें अपने बड़े भाई से मिली। इस प्रथम प्रेरणा के बाद भी उनकी काव्य-कला सदैव प्रेरणा की अनुगामिनी रही है। बचपन की कविताएँ तुकबन्दी हुआ करती थीं, जिनका अर्थ मात्र संगीत

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/११७

था। इनमें कुछ भाई के अनुकरण में ढीले-ढाले 'रेखता' छन्दों पर आधारित थीं और कुछ उनके मित्रों से सुनी गजलों की धुन पर। ध्वनि और लय के अनुकरण के कारण कुछ कविताएँ 'शिखरिणी' छन्द पर भी आधारित थीं। यह उनका प्रिय छन्द था।

उनकी ये प्रारम्भिक रचनाएँ नष्ट हो जाने के कारण आज उपलब्ध नहीं हैं। प्रारम्भिक लेखन के बारे में पंत का कहना है—“अब सोचता हूँ वे रचनाएँ छन्द और लयहीन रही होंगी। ठीक से लिखने का प्रयत्न मैंने अल्मोड़ा आने पर तेरहवाँ वर्ष पूरा होने अथवा चौदहवाँ प्रारम्भ होने पर किया होगा। वैसे पन्द्रह सोलह साल की आयु से मैंने एक प्रकार से नियमित रूप से लिखना प्रारम्भ कर दिया था। पर अल्मोड़ा आने से बहुत पहले से ही छन्दों की गलियों में भटकता और चक्कर खाता रहा हूँ।”

1909 में कौसानी के स्कूल की कक्षा तीन उत्तीर्ण कर पंत लगभग एक वर्ष तक घर पर ही रहे और मई 1910 में अपने भाई देवीदत्त के साथ आगे शिक्षा प्राप्ति के लिए अल्मोड़ा आ गये। यहाँ “गवर्नमेण्ट हाई स्कूल” की चौथी कक्षा में उनका नाम लिखवाया गया। परन्तु पहली बार घर से बाहर आने के कारण आरम्भ में उनका मन अत्यन्त खिन्न और उदास रहता, इसके अतिरिक्त “कौसानी में लिए स्वप्नों की रजत हरित झील—सी थी जिससे वियुक्त होकर मेरे प्राण बालू में मछली की तरह छटपटाते रहते थे।”²⁵

बाद में नागरिक जीवन का अभ्यास हो जाने पर उनका मन लग गया। “प्रकृति के एकान्त सौन्दर्य के अभाव की पूर्ति धीरे-धीरे नगर के सुख-वैभव का जीवन करने लगा।”²⁶ एक प्रकार से पंत के मानसिक और आत्मिक विकास का यह प्रथम चरण ही था। अभी तक उनके व्यक्तित्व का विकास प्रकृति के भाव-सौन्दर्य के बीच हो रहा था, यहाँ आकर उनके आभिजात्य व्यक्तित्व का परिमार्जन और संस्कार हो सका। “पंत के व्यक्तित्व

और समस्त काव्य-जीवन को प्रतिच्छवित उसकी स्पष्ट रूपरेखा को देने वाला यह आठ साल का अल्मोड़ा निवास उनके भीतर के सुन्दर, सुखद और संस्कृति विकास का सूचक है।”²⁷

अल्मोड़ा में पिता की विशाल अट्टालिका ‘देवी भवन’ में रहते हुए उन्हें विशेष गौरव का अनुभव होता, ग्रामीण रुचियाँ और मनोविश्वास उन्हें अब खटकने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने अपना नाम-परिवर्तन किया, जिसकी चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। दूसरा ध्यान उन्होंने अपनी वेश-भूषा पर दिया। “सौन्दर्य-बोध पहले-पहल मुझमें देह के स्तर पर उतरा और उसका एक विशेष प्रकार का अनुभव मुझे हुआ। पाँचवी कक्षा में छमाही परीक्षा के बाद एक बार मैं जाड़ों के दिनों में धूप सेंकने कौसानी के घर की छत पर दोपहर को बैठा था और निश्चिन्त मन से शान्त नील आकाश की ओर देख रहा था। थोड़ी ही देर बाद मेरे भीतर एक ऐसा सुखद अनुभव हुआ कि जैसे मेरी देह का भार खो गया हो और आकाश नील से अधिक नील होकर, एक स्नेहपूर्ण आँख की तरह सिमटकर, छोटा और गहन द्रवित होकर जैसे मुझे एकटक देखने लगा। मुझे प्रतीत हुआ कि चारों ओर सब कुछ बहुत ही स्वच्छ कोमलता में जैसे घुल-मिल गये हैं। एक बहुत ही पवित्र अनुभूति मुझे अपने अंगों से, अपनी त्वचा से, अपने चेहरे और हाथों से निखरती हुई सी प्रतीत हुई और मेरे मन में अत्यन्त प्रबल इच्छा हुई कि मुझे बहुत ही स्वच्छ, पवित्र और सुन्दर रहना चाहिये।—यह सम्भवतः फरवरी 1912 की बात है।”²⁸

अच्छे वस्त्र पहनना और स्वयं को सदैव सुन्दर बनाकर रखना उनका चिर-प्रिय शौक था। छठी कक्षा में उन्होंने अपने भाई की लाइब्रेरी में नेपोलियन का युवावस्था का सुन्दर चित्र देखकर उसी से प्रेरित हो, बाल बढ़ा लिये। साहित्य के प्रति तीव्र अभिरुचि भी इसी समय जाग्रत हुई। कवि-कर्म को अपनाने का निर्णय उन्होंने सम्भवतः सातवीं-आठवीं कक्षा में ले लिया था। बाद में

टैगोर को देखकर कवि और केश का सम्बन्ध उनके मन में दृढ़ हो गया।

शहर में रहते हुए पंत का दृष्टिकोण व्यापक होने लगा। उन्हें व्यक्तित्व के विकास और प्रतिष्ठा की महत्ता का ज्ञान हुआ। प्रकृति के माधुर्य के मध्य अपनी ही भावनाओं में डूबे व्यक्ति का मोह भंग हुआ और नागरीय जीवन के क्रिया-कलापों में वे सहर्ष भाग लेने लगे। यहाँ सबसे अधिक प्रभाव उन पर 'स्वामी सत्यदेव' के भाषणों का पड़ा, जो भाषा-प्रेम और देश-प्रेम से ओत-प्रोत होते थे—

देशभक्ति के साथ मोहिनी

मंत्र मातृभाषा का पाकर

प्रकृति प्रेम मधुरस में डूबा

गँज उठा प्राणों का मधुकर।^{२०}

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि पंत जी के व्यक्तित्व में प्रकृति-प्रेम की सुकुमारता स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है, जो 'पंत' जी के अनन्य व अद्वितीय प्रकृति-प्रेम की सुकुमारता का प्रतीक है।

: सन्दर्भ :

1. अतिमा :— सुमित्रानन्दन पंत — राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, पृ०-70
2. अतिमा :— सुमित्रानन्दन पंत — राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण पृ०-70
3. शिल्प और दर्शन — सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-185, प्रथम संस्करण, 1961
4. साठ वर्ष : एक रेखांकन — सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-14, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
5. अतिमा :— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-135-36
6. वीणा — सुमित्रानन्दन पंत पृ०-90

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२०

7. ग्रन्थि — सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-7
8. वाणी — (आत्मिका)— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-111
9. अतिमा — सुमित्रानन्दन पंत, 136
10. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-3
11. साठ वर्ष : एक रेखांकन— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-12
12. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-37
13. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-5
14. स्वर्ण किरण— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-15
15. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-62
16. कवियों में सौम्य संत : सुमित्रानन्दन पंत— बच्चन, पृ०-53
17. क्या भूलूँ क्या याद करूँ— बच्चन, पृ०-98
18. स्मृति चित्र (संकलन) परिचय से पूर्व—रामचन्द्र टण्डन, पृ०-18
19. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-99
20. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-44
21. साठ वर्ष : एक रेखांकन — सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-14
22. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-45
23. गन्धर्वी (प्रकृति : स्मृति के वातायन से) काव्य संकलन— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-49
24. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य— शान्ति जोशी, पृ०-51

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२१

25. साठ वर्ष : एक रेखांकन— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०— 7
26. साठ वर्ष : एक रेखांकन— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०— 7
27. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य — शान्ति जोशी, पृ०— 62
28. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य — शान्ति जोशी, पृ०— 66—67
29. वाणी — (आत्मिका)— सुमित्रानन्दन पंत, पृ०— 116

षष्ठ अध्याय उपसंहार

पंत के लिए मानव हित सर्वोपरि होने से हमें उनके काव्य में मानवता के दर्शन होते हैं। पंत युग-युग से जर्जर होती मानवता को जटिल बंधनों से मुक्त करने की मंगल आकांक्षा के कारण विभिन्न विचारधाराओं से अभिभूत होते रहे। पंत स्पष्ट रूप से कहते हैं “वाह्य रूप से एक सुव्यवस्थित तथा समृद्ध तंत्र में रहने पर भी यदि मानव-जीवन भीतर से उन्नत न हो सके और यदि उसमें उच्चतम मानवीय गुणों का विकास होने के बदले वह केवल समतल शक्तियों से जूझने के लिये मात्र मात्र बन जाये और उसे मनुष्यत्व के मूल्य पर वाह्यव्यवस्था से संतुलन स्थापित करना पड़े तो ऐसा समाज या तंत्र और जिसके भी योग्य हो मनुष्य के योग्य नहीं हो सकता।”¹ अन्यत्र वे लिखते हैं कि “मेरे मन में मानव जीवन के सम्बन्ध में एक नयी आशा और प्रेरणा का संचार होने लगता है।”²

पंत काव्य में प्रारम्भ में जहाँ प्रकृति प्रेम, नारी प्रेम मिलता है वहीं उनके परवर्ती साहित्य में मानव जाति के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी है कवि पर मार्क्स का प्रभाव था जिसके कारण उन्होंने मानव मूल्यों एवं उच्चादर्शों के प्रति अपनी बौद्धिक सहानुभूति प्रकट की है। युगवाणी, ग्राम्या जैसी रचनाओं में मानव प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है—

मानव की चेतना न ममता

रहती तब आँखों में उस क्षण!

हर्ष, शोक, अपमान, ग्लानि

दुख दैन्य न जीवन का आकर्षण।³

कवि अपनी मानवतापरक सोच से एक ऐसी समाजव्यवस्था की परिकल्पना करता है जिसमें सभी मानव एक दूसरे से सौहार्द्रपूर्वक रह सकें तथा साथ ही जिसमें मानव अभावों का माध्यम बना रहे—

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२२

“इन कीड़ों का भी मनुज बीज
यह सोच हृदय उठता पसीज
मानव प्रति मानव की विरक्ति
उपजाती मन में क्षोभ खीझ।”⁴

नवमानवतावादी युग की पंत की प्रमुख रचनायें हैं- उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, अतिमा, लोकायतन, चिदम्बरा, अभिषेकिता और समाधिता। इनमें से कुछ काव्य संकलन पूर्वकाव्य संकलनों से निर्मित हैं। ‘चिदम्बरा’ पर कविवर पंत को भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार ‘ज्ञानपीठ पुरस्कार’ प्राप्त हुआ है। ‘उत्तरा’ की कविता ‘गीत विहग’ में उन्होंने नवमानवता का संदेश इन शब्दों में दिया है।

“मैं नवमानवता का सन्देश सुनाता”

‘अतिमा’ में संकलित ‘संदेश’ कविता में कवि ने मन को विराट आत्मा से युक्त कर प्रेम, सौन्दर्य एवं लक्ष्ययुक्त जीवन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी है:

मन को विराट की आत्मा से सर्वयुक्त
तुम प्यार करो सुन्दरता में रहना सीखो।
जो अपने ही में पूर्ण स्वयं है लक्ष्य स्वयं
कवि यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन को।⁵

‘उत्तरा’ से लेकर ‘अभिषेकिता’ तक की उनकी सभी रचनाएँ मानवता को उन्नत बनाने के लिए दिए गये सन्देशों से युक्त हैं। जाति-पाति एवं वर्ग की संकीर्णता से स्वयं को मुक्त कर लेना चाहिए और व्यक्ति को अपने अन्दर मानवीय गुणों का विकास करना चाहिए। मानव हृदय जब प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है तभी उनके बीच की खाई नष्ट हो जाती है। पंत जी ने यहां विश्वबन्धुत्व एवं लोककल्याण की भावना पर विशेष बल दिया है। वे कहते हैं-

वह हृदय नहीं जो करे न प्रेमाराधन।
मैं चिर प्रतीति में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण।

वे जानते हैं कि परमाणु बम का खतरा मानव मात्र को त्रस्त

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२४

एवं आशंकित किए हुए है:

देश जाति की मोहभित्तियां रोकें भू मानव विकास
क्रम।

मुक्त नहीं चेतना त्रस्त मन, मंडराता सिर पर
यम-अणुबम॥

मानवता का विकास तभी होगा तब मानव के मन में व्याप्त ईर्ष्या और द्वेष के भाव नष्ट हो जायेंगे तथा सभी मानव परस्पर प्रेम भाव से भर जायेंगे। वह मनुष्य से कहता है कि देवों की आराधना करने वाले मानव तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि मानवता का विकास ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।

मानवता को समझो हे देवों के आराधक।

मानव के भीतर ईश्वर ही अविरत साधक॥

नवमानवता के सन्देश वाहक पंत जी धर्म, नीति और संस्कृति का वह रूप मिटा देना चाहते हैं जो मानव-मानव में भेद करता है। ‘प्रकाश, पतंगे और छिपकलियाँ’ नामक कविता में उन्होंने बताया है कि प्रकाश आत्मस्थित ज्योति है, जिस पर न्योछावर होने वाले पतंगे हैं- आत्मा, मन एवं शरीर। स्वार्थरत जीव ही वह छिपकली है जो स्वार्थ साधना में लगी हुई है:

पर प्रकाश प्रेमी पतंग या छिपकलियां केवल प्रतीक भर।

ये प्रवृत्तियां भू मानव की इन्हें समझ लेना श्रेयस्कर॥

ये आत्मा, मन, देह रूप है साथ-साथ जो जग में रहते।

शिखा आत्मस्थित ज्योति स्पर्श हित अन्ध शलभ तपते दुःख सहते॥

पंत जी की धारणा है कि जब रत्न प्रसविनी वसुधा में समता के दाने बोये जायेंगे तभी इनमें मानवता की सुनहली फसल उगेगी:

रत्न प्रसविनी वसुधा अब मैं समझ सका हूँ

इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं।

इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं।

इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं।

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२५

हम जैसा बोयेंगे वैसा ही पायेंगे।⁶

पूर्व अध्याय में हमने विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से पंत के काव्य में मानवतावाद को स्पष्ट किया। संवेदना एवं करुणा के रूप में हमने देखा कि पंत के हृदय में प्रत्येक मानव के लिये करुणा है संवेदना है वह प्रत्येक मानव को इस संसार का एक महत्वपूर्ण अंग मानते हैं वह मानव जीवन में दरिद्रता, कुरूपता, अपमान, अंधकार, दुख आदि पशुतुल्य स्थितियों का यथार्थ चित्रण करते हैं। उनके प्रति करुणा एवं संवेदना का भाव रखते हैं। देशभक्ति एवं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत वे मातृभूमि को माँ मानते हैं उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण के स्वर सुनाई पड़ते हैं। डॉ० भगीरथ मिश्र ने तो यहाँ तक कहा है कि पंत की आत्मा रात-दिन राष्ट्र के उत्थान की चिन्ता करने में, उसे सजाने संवारने में तथा पुरातन रूढ़ियों को तोड़कर नव निर्माण में संलग्न थी।

मानव के चारित्रिक उत्कर्ष के रूप में हमने देखा कि पंत का मन मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये छटपटाता था। उनके अनुसार “मुझे प्रतीत होने लगा जैसे प्रकृति का सबसे सूक्ष्म निगूढ़ गहन तथा जटिल रूप वनस्पति तथा पशु-पक्षी जगत से कहीं अधिक महत्वपूर्ण मानव जीवन में अभिव्यक्त हुआ है।”⁷ पंत के मन में नारी के लिये श्रद्धा, उनके विकास की आकांक्षा तथा समाज में उसकी दयनीय स्थिति को लेकर चिन्ता रही। पंत ने दहेज प्रथा से होने वाले नारी के नारकीय जीवन का सजीव चित्रण अपने काव्य में किया है। वे नारी के पिछड़ेपन से दुखी थे। इसी समस्या को दूर करने के लिये उन्होंने अपने काव्य में नारी की दयनीय स्थिति को दूर करने का कारण बताया। वे नारी हृदय के पावन उन्मुक्त प्रसंगों, गौरव को यथावत सम्मान देते थे।

मानव-विकास और शिक्षा-विकास बिन्दु में पंत जी एक विशिष्ट शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे। उनका कथन था- “हृदय की शिक्षा में हमारी विश्व संस्कृति के मानव प्रेम के एवं समस्त

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२६

जीवन कल्याण के मूल अन्तर्निहित है जो शिक्षा हृदय के कपाट खोलकर मनुष्य के भीतर विश्वप्रेम की उन्मुक्त वायु नहीं भर सकती वह शिक्षा हमारे सत्य की कुंजी नहीं हो सकती।”⁸ पंत जी ने बुद्धि की शिक्षा के साथ-साथ हृदय की शिक्षा पर जोर दिया जो कि मानव हित के लिये हो।

पंत जी राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय एकता के भी पक्षधर थे। वे ईश्वर भक्ति से अपने लिये कोई आकांक्षा नहीं रखते थे वे जो कुछ भी ईश्वर से चाहते थे वह लोक-कल्याण, विश्व-कल्याण के लिये चाहते थे। अपने लिये चाहते थे तो ऐसी शक्ति जिससे विश्व कल्याण कर सकें। पंत का संस्कृति की रक्षा के प्रति भी उदार दृष्टिकोण था वह नव संस्कृति चाहते थे उनके अनुसार मानवता की प्रतिष्ठा से ही नव संस्कृति का निर्माण हो सकता है और नयी संस्कृति में नवमानवता का नव प्रकाश होगा, नारी की मुक्ति होगी।

सामाजिक चिन्तन के प्रति उदार दृष्टि के रूप में हम देखते हैं कि सामाजिक जागरूकता पंत के स्वभाव में जन्मजात थी। सामाजिक जीवन की सीमाओं से क्षुब्ध होकर उन्होंने युगान्त, युगवाणी तथा ग्राम्या में पुरानी दुनिया की अंध-रूढ़ि, रीति परंपराओं तथा वैज्ञानिक युग से पहले की संकीर्ण आर्थिक राजनीतिक प्रणालियों तथा सामाजिक परिस्थितियों में पथराई हुई नया जीवन की चेतना पर निर्मम आघात किये।

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पंत जी की काव्य यात्रा अनवरत रूप से जारी रही है। प्रारम्भ में वे छायावादी विचारधारा से अनुप्राणित रहे। बाद में प्रगतिवादी कविताएं लिखने लगे। कालान्तर में अरविन्द दर्शन से प्रभावित होकर उन्होंने अन्तश्चेतनावादी रचनाएं लिखीं और फिर विश्व बन्धुत्व एवं लोककल्याण की भावना से प्रेरित होकर उनकी रचनाओं का स्वर नवमानवतावादी हो गया। साधना के पथ पर सतत अग्रसर इस कवि ने अपनी प्रतिभा कल्पना और अनुभूति के माध्यम से जो रचनाएं प्रस्तुत कीं उनमें युग का स्पन्दन

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१२७

है और युग की अनुभूति है। बच्चन जी ने पंत जी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है- “जब सदियां बीत जायेंगी और हिन्दी हिन्द की एकता की भाषा होगी तब यह सहज स्पष्ट होगा कि राष्ट्रभाषा का यह कवि सचमुच उस राष्ट्र का जन चारण था।”

उनकी कविता निश्चय ही मानवता के उत्तरोत्तर विकास की गाथा है।

सन्दर्भ

1. साठ वर्ष एक रेखांकन, पंत ग्रंथावली, भाग 6, पृ० 168
2. नव मानवता का स्वप्न, पंत ग्रंथावली, भाग 6, पृ० 168
3. ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, पृ० 26
4. वही, पृ० 28
5. U.G.C. Net, उपकार साहित्य
6. वही
7. मैं और मेरा परिवेश, निबंध, पंत ग्रंथावली, भाग 6, पृ० 184
8. ज्योत्स्ना, सुमित्रानंदन पंत, पृ० 79-70

परिशिष्ट संदर्भ ग्रंथ सूची

(क) आधार ग्रंथ : सुमित्रानंदन पंत की कृतियाँ

1. वीणा - इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
2. ग्रंथि - भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण
3. पल्लव - राजकमल, दिल्ली, सातवां संस्करण, 1963
4. गुंजन - भारती भण्डार, इलाहाबाद, सातवां संस्करण, संवत् 2010 वि०
5. ज्योत्स्ना - भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
6. युगान्त - लोकभारती, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण
7. युगवाणी - भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्र०सं०
8. ग्राम्या - भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण संवत् 2008 वि०
9. स्वर्ण किरण - भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2004 वि०
10. स्वर्णधूलि - भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2004 वि०
11. उत्तरा - भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2006 वि०
12. रजत शिखर - भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2008 वि०
13. शिल्पी - सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद
14. सौवर्ण - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं० सन् 1957
15. अतिमा - राजकमल दिल्ली, द्वितीय संस्करण संवत् 2015 वि०
16. वाणी - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण, सन्

1958

17. कला और बूढ़ा चांद - राजकमल, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959
18. लोकायतन - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1964
19. किरण-वीणा - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1967
20. पौ फटने से पहले - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1967
21. पतझर : एक भावक्रांति - राजकमल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1969
22. गीत-हंस - लोक भारती इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1969
23. शंखध्वनि - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1971
24. शशि की तरी - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन्
25. समाधिता - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1964
26. आस्था - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1973
27. सत्यकाम - राजकमल, दिल्ली, प्र० सं०, सन् 1976
28. कला और संस्कृति - सुमित्रानन्दन पंत

(ख) सहायक ग्रंथ :

1. आधुनिक काव्य रचना और विचार - आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी
2. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश बाजपेयी
3. आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डॉ० नगेन्द्र
4. आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन - डॉ० इन्द्रनाथ मदान
5. आधुनिक हिन्दी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - जगदीश नारायण त्रिपाठी
6. आलोचना के मानदण्ड - शिवदान सिंह चौहान,
7. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ - डॉ० पी आदेश्वर राव
8. कवियों में सौम्य संत : सुमित्रानन्दन पंत - डॉ० हरिवंश राय बच्चन
9. कवि सुमित्रानन्दन पंत - आर०जी० शर्मा और पी०सी० जायसवाल
10. कवि सुमित्रानन्दन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य - शिवनन्दन प्रसाद

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१३०

11. सुमित्रानन्दन पंत, कवि और काव्य - शारदा लाल
12. सुमित्रानन्दन पंत और उनका काव्य (सत्यकाम) - डॉ० श्रीकान्त शुक्ल
13. सुमित्रानन्दन पंत का काव्य विकास - डॉ० अस्मिता सिन्हा
14. सुमित्रानन्दन पंत : कवि और काव्य - डॉ० किशवर सुल्ताना
15. सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में संस्कृति और जीवन दर्शन - डॉ० दीपा गुप्ता
16. सुमित्रानन्दन पंत वैचारिक व्यक्तित्व - डॉ० किरन गर्ग
17. सुमित्रानन्दन पंत और निराला के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ० मंजुला जैन

सुमित्रानन्दन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१३१



लेखक परिचय

नाम	:	सुमित अग्रवाल
पिता का नाम	:	श्री विनोद कुमार अग्रवाल
माता का नाम	:	श्रीमती पुष्पा अग्रवाल
भ्रातागण	:	श्री डॉ. अमित अग्रवाल (न्यूरो सर्जन) श्री सचिन अग्रवाल (अधिवक्ता)
शैक्षिक योग्यता	:	एम.ए. (हिन्दी), एम.फिल्
शोध कार्य	:	दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास पीएच.डी. उपाधि हेतु पंजीकृत
अन्य	:	मंत्री- आर्य समाज, धनौरा आर्यावर्त केसरी, अमरोहा के विशेष प्रतिनिधि आकाशवाणी, रामपुर से वार्ताओं का प्रसार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं/जर्नल्स में आलेख प्रकाशित
सम्प्रति	:	भागीरथी देवी स्नातकोत्तर महाविद्यालय मण्डी धनौरा में हिन्दी के प्राध्यापक
सम्पर्क सूत्र	:	श्री सुमित अग्रवाल मौहल्ला सोसायटी, मंडी धनौरा जिला- अमरोहा (उ.प्र.) पिन-2442 मोबा. : 8923285659

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/१३२

सामयिक चेतना
प्राच्य सभ्यता एवं संस्कृति के उत्कर्ष व
समाज के कल्याणार्थ
उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशक

आर्यावर्त प्रकाशन

‘सौम्या सदन’, गोकुल विहार, अमरोहा (उ.प्र.)

☎ : 05922-262033, 09412139333